मूल्य : ₹ 30

अप्रैल 2025

आई.एस.ओ. 9001: 2015 संगठन

भाकृअनुप
ICAR

खेती

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ

/InAgrisearch | /user/icarindia | officialicarindia | www.icar.org.in | /icarindia

कृषि प्रसंस्करण केन्द्रों से ग्रामीण समृद्धि

कृषि में निरंतर बढ़ते नवाचार, उन्नत तकनीकों एवं अनुसंधानों ने ग्रामीण विकास एवं देश की खाद्य सुरक्षा को और मजबूत बनाने का कार्य किया है। देश में नयी तकनीकों एवं प्रसंस्करण के माध्यम से ग्रामीण सशक्तिकरण की ओर निरंतर ध्यान दिया जा रहा है। इसी कड़ी में कृषि प्रसंस्करण केन्द्रों की स्थापना एवं संचालन एक महत्वपूर्ण नवाचार है। ग्रामीण स्तर पर अनाज एवं मसालों के प्रसंस्करण द्वारा किसानों एवं महिलाओं की आजीविका को और बेहतर किया जा सकता है। गावों में अधिकतर किसान अपने कृषि उत्पादों को प्रसंस्करण के लिए पास के कस्बों एवं शहरों में ले जाते हैं। कई किसान इन उत्पादों को कम दामों में सीधे बिचौलियों को बेच देते हैं। इन्हीं मुद्दों को ध्यान में रखकर फार्मर फर्स्ट कार्यक्रम के अंतर्गत गांवों में कृषि प्रसंस्करण इकाई की स्थापना की गयी है। इन इकाइयों में मिनी चावल मिल, पल्वराइजर, मिनी आटा मिल,पीकेवी दाल मिल, मिनी तेल निष्कर्षण मशीन और मसाले पीसने वाली आधुनिक मशीनें उपलब्ध हैं। यह इकाई किसान समूह अथवा महिला स्वयं सहायता समूह द्वारा संचालित की जा सकती है।

कृषि प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना करने से ग्रामीण क्षेत्रों में सकारात्मक परिवर्तन हुआ है। इन केंद्रों के माध्यम से किसानों को नई तकनीकों का परिचय होता है और उन्हें उन तकनीकों का सही तरीके से उपयोग करना सिखाया जाता है। इससे कृषि उत्पादों के मूल्य निर्धारण में सुधार होता है, जिससे किसानों को अधिक मुनाफा प्राप्त होता है।

- कृषि प्रसंस्करण केंद्रों के माध्यम से किसानों को उनकी उपज को अच्छे तरीके से प्रसंस्करित करने के लिए आवश्यक सुविधाएं मिलती हैं। इससे उन्हें बाजार में अच्छी कीमत मिलती है और उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है। गांवों में कृषि प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना से स्थानीय स्तर पर रोजगार का एक नया स्रोत भी बनता है।
- कृषि प्रसंस्करण केंद्रों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी जानकारी का स्रोत बनता है और इससे किसानों की जागरूकता में भी वृद्धि होती है। नई तकनीकी का सही तरीके से उपयोग करने के लिए किसानों को प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। इससे उनके कौशल में भी सुधार होता है।
- इन केंद्रों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न उद्यमों की स्थापना होती है। इससे स्थानीय लोगों को रोजगार का एक सुगम स्रोत मिलता है और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार होता है।
- कृषि प्रसंस्करण केंद्रों का सकारात्मक प्रभाव ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के अलावा किसानों की आर्थिक समृद्धि और गांवों में नए रोजगार उत्पन्न करता है। इसके माध्यम से कृषि से जुड़े लोगों को नई संभावनाओं का एक नया सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण मिल रहा है।

प्रसंस्करण इकाई से ग्रामीण आजीविका में सुधार

किसानों के अनुकूल

- इस उद्यम को भूमिहीन और छोटे किसानों के लिए जीवन रेखा के रूप में देखा जाता है।
- केन्द्रों में स्थापित मशीन संचालन को कृषक महिलाओं के अनुकूल बनाया गया है। इससे इन महिलाओं की भागीदारी और बढ़ गई है।
- कृषक महिलाओं और ग्रामीण युवाओं दोनों के लिए रोजगार सृजन का एक महत्वपूर्ण सकारात्मक परिणाम रहा है।
- कृषि प्रसंस्करण केंद्र ग्रामीण स्तर पर एक व्यवहार्य आय सृजन और आजीविका विकल्प के रूप में उभरे हैं।

ग्राम स्तरीय कृषि-प्रसंस्करण केंद्रों की स्थापना एक सराहनीय पहल है। यह प्रणाली विशेषकर गरीब और भूमिहीन श्रेणियों के किसानों के सामने आने वाली चुनौतियों का समाधान करती है। कृषकों की आर्थिक स्थिति में वृद्धि, महिला सशक्तिकरण, रोजगार सृजन और कृषि पद्धतियों में समग्र सुधार पर सकारात्मक प्रभाव सतत ग्रामीण विकास को बढ़ावा देने में इन केंद्रों के महत्व को रेखांकित करता है। ग्रामीण परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में, ये केंद्र आशा की किरण के रूप में खड़े हैं और ये कृषक समुदायों के भीतर आत्मनिर्भरता और समृद्धि को बढ़ावा देते हैं। ■

सकारात्मक परिणाम

- **आर्थिक लाभः** कृषि-प्रसंस्करण इकाई की स्थापना से किसान परिवारों को सीधे लाभ मिलता है, जिससे प्रति माह 10 से 12 हजार रुपये की आय होती है। इससे न केवल व्यक्तिगत आर्थिक स्थिति में सुधार होता है, बल्कि समुदाय के समग्र आर्थिक विकास में भी योगदान मिलता है।
- **महिला सशक्तिकरणः** यह महिलाओं के लिए सशक्तिकरण का एक सुगम स्रोत बन गया है, जो उन्हें कौशल विकास और कृषि प्रसंस्करण गतिविधियों में भागीदारी के अवसर प्रदान करता है। यह न केवल उनकी भूमिकाओं में विविधता लाता है, बल्कि समुदाय में महिलाओं के समग्र सामाजिक-आर्थिक उत्थान में भी योगदान देता है।
- **फसल कटाई उपरांत नुकसान में कमीः** ग्रामीण स्तर पर खेत के समीप कृषि प्रसंस्करण केंद्रों की निकटता से फसल कटाई के बाद होने वाले नुकसान में काफी कमी आई है। यह सुनिश्चित करता है कि किसानों को गुणवत्तापूर्ण उत्पाद प्राप्त हों, जो कृषि पद्धतियों के समग्र सुधार में योगदान दें।
- **रोजगार सृजनः** कृषि प्रसंस्करण इकाई की स्थापना ने ग्रामीण युवाओं के लिए रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं, मौसमी प्रवासन को कम किया है और समुदाय के भीतर स्थायी आजीविका को बढ़ावा दिया है।
- **विविधीकरणः** कृषि प्रसंस्करण केंद्र कृषि में विविधीकरण को बढ़ावा देने, किसानों को वैकल्पिक फसलों और उत्पादों का पता लगाने के लिए प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इससे पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर निर्भरता कम होती है।

ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान की मासिक पत्रिका
वर्ष: 77, अंक: 12, अप्रैल 2025

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. राजबीर सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. अनुराधा अग्रवाल** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. विनोद कुमार सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-क्रीडा, हैदराबाद
4. **डा. धीर सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल
5. **डा. के.के. सिंह** — **सदस्य**
   कुलपति
   सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि विश्वविद्यालय
   मोदीपुरम, मेरठ
6. **श्री हर्षवर्धन** — **सदस्य**
   प्रधान जनसंपर्क अधिकारी, इफको, नई दिल्ली
7. **श्री रितु राज** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **सुश्री नीलम त्यागी** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
9. **सुश्री सुनीता अरोड़ा** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक (डीकेएमए)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली

संपादक
सुनीता अरोड़ा

प्रभारी (उत्पादन एकक)
पुनीत भसीन

प्रभारी (व्यवसाय एकक)
भूपेन्द्र दत्त

दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12

एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक : रु. 300.00
विशेषांक : रु. 100.00

E-mail : khetidipa@gmail.com

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है। रसायनों-कीटनाशकों की डोज संबंधित संस्तुतियों का प्रयोग विशेषज्ञों से परामर्श के बाद करें। समस्त विवादों के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

इस अंक में

निदेशक की कलम से — **केंद्रीय बजट की विशेष झलकियां**, अनुराधा अग्रवाल

4 हस्तक्षेप
शुष्क गाय का प्रबंधन
टी.के.एस. राव, शशीपाल, प्राचुर्या बिश्वाल, तृप्ति कुमारी, धीरेन्द्र कुमार **और** चंद्रहास

7 मिलेट्स
श्रीअन्न हैं पोषक तत्वों से भरपूर
शेषनाथ मिश्रा, तेजपाल सिंह, चन्द्रपाल सिंह, विनय कुमार **और** लक्ष्मी कान्त

10 परिदृश्य
अर्ध-शहरी खेती के लाभ
वीर सिंह, राजेश सिंह चौहान, आकाश **और** कमल सिंह

12 नियंत्रण
कुरमुला कीट का प्रभावी प्रबंधन
अंशुमन सेमवाल, निकिता चौहान, ओजस चौहान, राकेश कुमार **और** विश्व गौरव सिंह चंदेल

14 रखरखाव
नवजात पशुओं की देखभाल
आशुतोष कमल, वीकेश कुमार **और** आनन्द कुमार

17 दृष्टिकोण
जम्मू और कश्मीर में प्राकृतिक खेती का विकास
बनारसी लाल, हेमा त्रिपाठी, अमरीश वैद्य **और** जगदीश कुमार

21 रोकथाम
झींगा में प्रमुख रोगों का नियंत्रण
भावेश चौधरी, नयन चौहान **और** आर्या सिंह

23 मृदा स्वास्थ्य
लवणीय-क्षारीय मृदा में लीचिंग एवं जिप्सम का महत्व
मोहन लाल दौतानियां, राजेश कुमार दौतानियां, वासुदेव मीणा, चेतन कुमार दौतानियां **और** ललित कृष्ण मीणा

विषय-सूची

25 चुनौती

पशुधन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

राजेश कुमार अग्रहरि, सीताराम मिश्र **और** अनुष्का पाण्डेय

28 स्वास्थ्य

किसानों के लिए प्राथमिक चिकित्सा का महत्व

रीना कुमारी, सतीश भागवत राव आहेर **और** सुब्रोतो नंदी

31 नई तकनीक

कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका

संदीप कुमार, जनक राज **और** राम स्वरूप चौधरी

33 विमर्श

मृदा अपरदन के कारक एवं निवारण

शिव मंगल प्रसाद, सौम्य साहा, विभाष चन्द्र वर्मा, पीयूष कुमार जायसवाल **और** पीयूष भार्गव

35 दुग्ध क्रांति

डेरी फार्म की उत्पादन क्षमता में वृद्धि

विपिन मौर्य

38 तिलहन

तिल की प्राकृतिक खेती

देवेश पाठक, अमन सिंह **और** भास्कर प्रताप सिंह

40 कृषि कैलेण्डर

अप्रैल के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर **और** आदित्य सिंह

आधुनिक II

कृषि प्रसंस्करण केन्द्रों से ग्रामीण समृद्धि

नई तकनीक III

कृषि संबंधी कार्यों के लिए सेंसर-आधारित और रोबोटिक उपकरण

निदेशक की कलम से

केंद्रीय बजट की विशेष झलकियां

भारत को 'विश्व का खाद्य भंडार' बनाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा बजट 2025-26 में कृषि क्षेत्र के लिए नये 9 मिशन या कार्यक्रमों की घोषणा की गई है जो इसकी वृद्धि और उत्पादकता को बढ़ाने पर केंद्रित हैं:

- **प्रधानमंत्री धन-धान्य कृषि योजना:** इस कार्यक्रम से 1.7 करोड़ किसानों को लाभ मिलने की आशा है। इसे राज्यों के साथ साझेदारी में कम उत्पादकता वाले 100 जिलों में लागू किया जायेगा। इसके तहत किसानों को अधिक कर्ज लेने में मदद मिलेगी। इसके साथ ही फसल विविधीकरण को बढ़ावा मिलेगा और कटाई उपरांत सुविधाओं में सुधार होगा।
- **दालों में आत्मनिर्भरता के लिए मिशन:** इसका मुख्य केंद्र अरहर, उड़द और मसूर के उत्पादन में वृद्धि पर रहेगा। उत्पादन में बढ़ोतरी हेतु 6 वर्षों का यह मिशन वर्ष 2025-26 के लिए 1,000 करोड़ रुपये के बजट के साथ शुरू किया जायेगा। इसके साथ ही किसानों को दलहनी फसलों के उत्पादन के लिए अतिरिक्त समर्थन मिलेगा।
- **सब्जी और फलों के लिए व्यापक कार्यक्रम:** इसका उद्देश्य उत्पादन, आपूर्तिश्रृंखला, प्रसंस्करण के माध्यम से किसानों को लाभकारी मूल्य दिलवाना है।
- **कपास उत्पादकता मिशन:** यह मिशन कपास की उत्पादकता और स्थिरता में सुधार करने तथा अतिरिक्त लंबे रेशे वाली कपास किस्मों को बढ़ावा देने पर केंद्रित होगा।
- **उच्च उपज वाले बीजों का राष्ट्रीय मिशन:** यह मिशन 100 से अधिक उच्च उपजशील, कीट प्रतिरोधी और जलवायु अनुकूल बीजों के व्यावसायिक उपयोग, लक्षित विकास और प्रचार पर केंद्रित रहेगा।
- **मखाना बोर्ड:** बिहार में मखाना उत्पादन, प्रसंस्करण, मूल्य संवर्धन और विपणन को बढ़ाने के लिए एक मखाना बोर्ड स्थापित किया जायेगा। इसके तहत मखाना उत्पादन के लिए आधुनिक उन्नत तकनीकों के प्रसार हेतु उत्पादकों को प्रशिक्षित किया जाएगा। इसके साथ ही किसानों को उच्च उपजशील मखाने की किस्मों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। इससे न केवल उत्पादन बढ़ेगा, बल्कि उत्पादकों को समृद्धि की राह पर प्रशस्त भी किया जा सकेगा।
- **ग्रामीण समृद्धि और सुदृढ़ता कार्यक्रम:** यह कार्यक्रम ग्रामीण महिलाओं, युवा किसानों, ग्रामीण बेरोजगार युवाओं, सीमांत एवं छोटे किसानों और भूमिहीन परिवारों पर केंद्रित रहेगा। यह कार्यक्रम कृषि में रोजगार की संभावनाओं के लिए कौशल विकास, निवेश और तकनीक के माध्यम से समाधान करेगा। इस मिशन का कार्यान्वयन राज्यों की साझेदारी के साथ किया जायेगा।
- **मत्स्य पालन क्षेत्र:** केंद्र सरकार द्वारा भारतीय विशेष आर्थिक क्षेत्र (ईईजेड) में मत्स्य संसाधनों के सतत उपयोग के लिए एक सक्षम नीति का कार्यान्वयन किया जाएगा। इसमें अंडमान-निकोबार और लक्षद्वीप पर विशेष ध्यान देने पर बल दिया जायेगा।
- **असोम में यूरिया संयंत्र:** असोम के नामरूप में सालाना 12.7 लाख मीट्रिक टन क्षमता वाला एक नया यूरिया संयंत्र स्थापित किया जायेगा। इससे देश में यूरिया की आपूर्ति को और अधिक बढ़ावा मिलेगा।

उपरोक्त मिशन के तहत भारत में किसानों एवं कृषि कार्य में संलग्न लोगों, महिलाओं, युवाओं के लिए आजीविका में सुधार की संभावनाओं को सृजित किया जाएगा। इससे कृषि क्षेत्र के विकास में और तेजी आ सकेगी। इसके साथ ही यह आशा ही नहीं वरन पूर्ण विश्वास भी है कि ग्रामीण स्वलंबन की परिकल्पना को पूर्ण करने में ये कार्यक्रम अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे।

अनुराधा

(अनुराधा अग्रवाल)

शुष्क गाय का प्रबंधन

टी.के.एस. राव, शशीपाल, प्राचुर्या बिश्वाल, तृप्ति कुमारी, धीरेन्द्र कुमार और **चंद्रहास**

“गायों को अनिवार्य रूप से 45-60 दिनों के ड्राई पीरियड (शुष्क अवधि) की आवश्यकता होती है। इस समय दूध निकालना बंद कर दिया जाता है। इसके साथ ही यदि गाय 7-8 महीने की गर्भवती है, तो स्थिति और भी अच्छी हो जाती है। गर्भधारण की अवधि पूरी होने तक पुन: गाय दूध देने की अवस्था में वापस आ जाती है। शुष्क अवधि में पशुओं का उचित प्रबंधन तथा देखभाल आवश्यक है।”

गाय का दूध देना शुष्क अवधि के समय शुरू होता है, न कि उसके ब्याने के समय। गाय में दुग्ध उत्पादन के दौरान स्तन ग्रंथि कोशिका टूटती है। शरीर की स्थिति खराब हो जाती है। इस स्थिति में स्तन प्रणाली का फिर से पुनर्जनन और शारीरिक सुधार आने वाले स्तनपान/दूध उत्पादन के लिए पाचन तंत्र को तैयार करने हेतु शुष्क अवधि (दूध का उत्पादन बंद कर दिया जाता है) की आवश्यकता होती है। इस समय कैल्शियम और फॉस्फोरस के विशेष अनुपूरण की आवश्यकता होती है। इसे शुष्क अवधि के पहले दो सप्ताह तक ही सीमित रखा जाना चाहिए। यदि गायों में शुष्क अवधि की अनुमति नहीं दी जाती है, तो आगामी दुग्ध उत्पादन का स्तर 25 प्रतिशत तक कम हो जाता है।

पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय, अर्राबाड़ी-855107 किशनगंज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

आदर्श शुष्क अवधि 60 दिनों की है, हालांकि सामान्य स्थिति में यह 120-150 दिनों तक हो सकती है। लंबी और छोटी शुष्क अवधि दोनों में क्रमश: वर्तमान या आगामी उत्पादन में दूध उत्पादन कम हो जाता है। गाय की तुलना में पहली बछिया को अधिक ड्राई पीरियड/शुष्क अवधि की आवश्यकता होती है।

शुष्क अवधि के पहले दो हफ्तों के दौरान, उसके बाद ब्याने से दो हफ्ते पहले और ब्याने के दो हफ्ते बाद गायों को स्तनशोथ/थनैला रोग के संक्रमण की आशंका सबसे अधिक होती है।

शुष्क अवधि गायों और भैंसों के लिए निम्न निमित्त हेतु आवश्यक है:

- बीसीएस-बॉडी कंडीशन स्कोर में सुधार
- प्रसव के समय जटिलताएं कम करना
- प्रोडक्शन पीक पर जल्दी पहुंचना
- थन के स्वास्थ्य में सुधार के लिए
- समग्र प्रजनन क्षमता में सुधार करना

शुष्क गाय प्रबंधन में मुख्य रूप से तीन महत्वपूर्ण व्यावहारिकता शामिल हैं जैसे

- शुष्क गाय एंटीबायोटिक चिकित्सा
- टीट सीलेंट अनुप्रयोग
- विटामिन 'ई' अनुपूरण।

60 दिनों की शुष्क अवधि में यदि पशु का वजन 20 कि.ग्रा. बढ़ जाता है, तो

बाद के दूध उत्पादन में 30-50 कि.ग्रा. की वृद्धि होती है।

शुष्क काल (30-46 दिन)

इसे तीन उप-चरणों में विभाजित किया गया है। शुष्क अवधि 60 दिनों से अधिक बढ़ने पर स्थिर चरण की अवधि बढ़ जाती है। इसके अलावा शुष्क अवधि को भी दो भागों-फॉर ऑफ ड्राई पीरियड (शुष्क अवधि के पहले 4-6 सप्ताह) और क्लोजअप ड्राई पीरियड (संभावित ब्याने से पहले के अंतिम 3 सप्ताह) में विभाजित किया गया है।

गाय में शुष्क अवधि के निम्न तीन चरण होते हैं:

- एक्टिव इवोल्यूशन स्टेज
- स्टीडी स्टेज/फेज
- न्यू टिश्यू ग्रोथ/मैमरी ग्रोथ स्टेज

शुष्क प्रबंधन की प्रक्रिया

- **अचानक दूध दुहना बंद कर देना:** 5-8 कि.ग्रा. (कम उत्पादक) उत्पादन स्तर वाली गायों के लिए।
- **रुक-रुक कर दूध दुहना:** दूध उत्पादन 8-10 कि.ग्रा. स्तर वाली गायों के लिए।

कीटोसिस

शुष्क गाय की भ्रूण की जरूरतों, कोलोस्ट्रम उत्पादन के साथ-साथ उनकी अपनी जरूरतों से संबंधित उच्च ऊर्जा की मांग होती है। इसके अलावा तनाव के कारण गाय के प्रसव के करीब पहुंचने पर ड्राय मैटर इंटेक (डीएमआई) 30 प्रतिशत तक कम हो जाता है। ये सभी कारक मिलकर पशुओं को कई मेटाबॉलिक रोगों, विशेष रूप से कीटोसिस के संक्रमण में डालते हैं। यह एक मेटाबॉलिक डिसऑर्डर है, जो नेगेटिव एनर्जी बैलेंस के कारण होता है। केटोटिक गायों में अक्सर रक्त शर्करा की मात्रा कम होती है।

लक्षण

कीटोसिस के लक्षणों में भूख व दूध उत्पादन में कमी शामिल है। गाय के मूत्र, मल तथा अन्य स्राव से नेल पॉलिश की अजीब सी गंध आती है।

उपचार

ऊर्जायुक्त आहार प्रदान किया जाना चाहिए। डीएनएस ड्रिप, ग्लूकोज का इंजेक्शन, प्रोपलीन ग्लाइकोल फीडिंग और नियासिन फीडिंग इत्यादि की व्यवस्था करनी चानी चाहिए

इंट्रा मैमरी इंजेक्शन

-----डाई ऑफ टाइम---------ड्राई पीरियड--------प्री-काल्विंग पीरियड---
----1-4 दिन-------------- **30-46 दिन** -------10-14 दिन-----

शुष्क अवधि में देखभाल

- **अधूरा दूध दुहना/निकलना:** यह गायों को सुखाने का सबसे अच्छा तरीका है। यह विधि विशेष रूप से अधिक उत्पादन अर्थात 10 कि.ग्रा. से अधिक दूध देने वाली गायों के लिए उपयुक्त है।

दूध देना जल्दी बंद करने के लिए आहार और पानी का सेवन कम करने के साथ शुष्क करने की उपरोक्त विधियों का पालन किया जाना चाहिए।

- ब्याने से 1-2 सप्ताह पहले तथा शुष्क अवधि के 1-2 सप्ताह के दौरान गायों की स्तन ग्रंथि में संक्रमण की दर अधिक होती है
- शुष्क गाय को दूध देने वाली गाय से अलग करना चाहिए। शुष्क गाय की तुलना में दूध देने वाली गाय की आहार आवश्यकता अधिक होती है।

कैल्शियम रिलीजिंग मैकेनिज्म

विशेष रूप से ब्याने से 2-3 सप्ताह पहले कम कैल्शियमयुक्त आहार प्रदान करने से आनुवंशिकी से रक्त में कैल्शियम का संचार बढ़ता है। यह अंततः गाय में दूध बुखार के संक्रमण को कम करता है। दूसरे शब्दों में 'कम कैल्शियम और उच्च मैग्नीशियम सिद्धांत' से मिल्क-फीवर से बचा जा सकता है। मैग्नीशियम से भरपूर हरी सब्जियों में पालक, शलजम, केल और सरसों शामिल हैं। मैग्नीशियम की कमी से ग्रास टेटनी/लैक्टेशन टेटनी/ग्रास टेटनी/विंटर टेटनी और व्हीट पेस्चर पॉइजनिंग की आशंका रहती है।

गायों में डाउनर्स सिंड्रोम (सेकेंडरी रिकम्बेंसी)

गाय के लंबे समय तक लेटे रहने के दौरान दबाव के कारण मांसपेशियों और तंत्रिकाओं में चोट लगने से पैथो-फिजियोलॉजिकल लिजन विकसित होती है। यह जांघ की मांसपेशियों के दबाव से उत्पन्न इस्केमिक नेक्रोसिस है, जो

आहार प्रबंधन

- शुष्क गाय को शारीरिक स्थिति के अनुसार आहार देना चाहिए। बीसीएस 3 से 4 के बीच शारीरिक स्थिति का स्कोर पर्याप्त है अर्थात यदि शरीर की स्थिति अच्छी है, तो अतिरिक्त खिलाने की आवश्यकता नहीं है।
- उत्पादन के दौरान कैल्शियम, फॉस्फोरस की भारी हानि होती है; इसलिए शुष्क अवधि के दौरान आहार इन्हीं के साथ पूरा किया जाना चाहिए, लेकिन केवल प्रारंभिक शुष्क अवधि के दौरान। शुष्क अवधि के अंतिम 3 सप्ताह के दौरान कैल्शियम सीमित होना चाहिए, क्योंकि इससे दूध बुखार हो सकता है।
- शुष्क गाय को प्रतिदिन 30,000 से 50,000 आईयू विटामिन 'ए' खिलाना चाहिए। शुरुआती स्तनपान और दूध उत्पादन के दौरान गायें पर्याप्त ऊर्जा नहीं ले पाती हैं। अतः इन दिनों में गायों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

अक्सर दोनों पिछले पैरों को प्रभावित करता है। इसमें हाइपोकैल्सीमिया या मिल्क फीवर, हाइपोमैग्नेसीमिया या ग्रास टेटनी, एसिडोसिस, कीटोसिस आदि रोग शामिल हैं।

क्लोजअप गायों को विटामिन 'डी' खिलाना

प्रसव के अंतिम सप्ताह में गाय को विटामिन 'डी' की पूर्ति की जा सकती है। विटामिन 'डी' हड्डियों से कैल्शियम निकालने में मदद करता है। कैल्शियम और फॉस्फोरस का अनुपात 2:1 बनाए रखना चाहिए।

गायों को एनियोनिक साल्ट खिलाना

एनियोनिक साल्ट खिलाने से गाय का रक्त थोड़ा अम्लीय हो जाता है (रक्त में पी-एच मान कम हो जाता है)। इस प्रभाव

का तुरंत मुकाबला करने के लिए तथा रक्त को बफर करने के लिए हड्डियों से कैल्शियम छोड़ा जाता है। कैटायन Na, K, Ca आदि में धनात्मक आवेश होते हैं। आहार अधिक क्षारीय (उच्च रक्त पी-एच) स्थिति को बढ़ावा देता है, जो दूध बुखार जैसे रोग की वृद्धि के साथ जुड़ा हुआ है।

नेगेटिव डायटरी कैटायन एनायन डिफरेंस (डीसीएडी)/एसिडिक डाइट

नेगेटिव डीसीएडी आहार खिलाने से हाइपोकैल्सीमिया, मेट्राइटिस, मास्टिटिस और केटोसिस जैसे संक्रमण रोगों को कम किया जा सकता है। प्रसव से पहले गाय को ऋणात्मक खिलाना चाहिए और प्रसव के बाद गाय को धनायन खिलाना चाहिए।

दूध बुखार से बचाव

ब्याने के समय पशुओं के बीसीएस को ठीक किया जाना चाहिए (5 पॉइंट स्कोरिंग प्रणाली में 3.0-3.25 बीसीएस)। ब्याने से पहले कैल्शियम का सेवन कम करना चाहिए और किसी भी अतिरिक्त कैल्शियम से बचना चाहिए। शरद ऋतु में ब्याने के लिए हरे-भरे चरागाह से बचना चाहिए। इन घासों में मैग्नीशियम की मात्रा कम होती है। एडवांस प्रेग्नेंट गायों को बरसीम और लूसर्न घास खिलाने से बचना चाहिए। इस दौरान गाय को मैग्नीशियम से भरपूर खनिज देना चाहिए, लेकिन अतिरिक्त कैल्शियम नहीं।

गाय में बायां विस्थापित पेट

एबोमेसम आमतौर पर पेट के तल पर स्थित होता है। गैस से भर जाता है और पेट के बाएं शीर्ष तक बढ़ सकता है। एबोमेसम के दाहिनी ओर से बाईं ओर (एलडीए) विस्थापित होने की अधिक आशंका होती है। अधिक अनाज खिलाने और कटे हुए चारे से स्थिति और भी खराब हो जाती है।

सिफारिशें

गायों के प्रजनन एवं ब्याने की तारीखों का सटीक रिकॉर्ड रखा जाना चाहिए। गाय को लेट लैक्टेशन के दौरान अच्छे से खिलाया जाना चाहिए ताकि शुष्क अवस्था में वे पर्याप्त शारीरिक स्थिति (बीसीएस) में रहें। प्रत्येक गाय को कम से कम 45-60 दिनों की शुष्क अवधि की अनुमति दी जानी चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए कि शुष्क अवधि ब्याने के समय उचित स्थिति में होगी, यदि आवश्यक हो, तो पर्याप्त चारा और कुछ अनाज उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। गाय की आवश्यकतानुसार खनिज/मिनरल्स विटामिन की पूर्ति की जानी चाहिए।

उचित देखभाल-स्वस्थ गाय

चैलेंज फीडिंग

गर्भधारण के अंतिम दो सप्ताह के दौरान, प्रसव के करीब आने वाली गायों को सामान्य आहार से अधिक, कन्सन्ट्रेट खिलाने के लिए जाना जाता है।

मैस्टाइटिस का नियंत्रण

गायों में ड्रायिंग के बाद पहले सप्ताह के दौरान और ब्याने से ठीक पहले सप्ताह के दौरान गायों के स्तन नए संक्रमण के प्रति संवेदनशील होते हैं। 40 प्रतिशत नए संक्रमण शुष्क अवधि के दौरान उत्पन्न होते हैं। इसके लिए पोविडोन आयोडीन (आयोडोफोर) की एक टीट डिप की सिफारिश की जाती है। गाय का उपचार सबक्लिनिकल मैस्टाइटिस को ठीक करने का सबसे अच्छा अवसर प्रदान करता है। इसके लिए आहार में अधिक फाइबर सामग्री को शामिल किया जाता है। प्रोटीन का अधिक सेवन करवाने से बचना चाहिए। खनिज/मिनरल्स और विटामिन की आवश्यकताएं पूरी करनी चाहिए:

- अनुसंधान ने गायो में शुष्क अवधि के दौरान प्रोपलीन ग्लाइकोल, क्रोमियम और मेथियोनीन अनुपूरण के सकारात्मक प्रभाव की भी सूचना प्रदान की है।
- *गायों में शुष्क अवधि के दौरान सेलेनियम विटामिन 'ई' की पूर्ति।* दूध देना बंद करने के बाद गाय के लिए एंटीबायोटिक्स का स्तन के अंदर इंजेक्शन आवश्यक है। नए संक्रमणों के प्रवेश से बचने के लिए टीट सीलेंट (ऑर्बसील) का भी उपयोग किया जा सकता है।
- **टीट सीलेंट:** सामान्यत: ओर्बीसील को टीट सीलेंट की तरह उपयोग किया जाता है। यह बाहरी संक्रमणों को स्तन प्रणाली में जाने से रोकता है।

जरूरी

ब्याने के समय गायों के रक्त में कैल्शियम की कमी को रोका जाना चाहिए। ट्रेस मिनरल्स एनआरसी को 35 प्रतिशत की सीमा से ऊपर दिया जाना चाहिए। ब्याने से पहले 3 सप्ताह तक मजबूत रोग प्रतिरक्षा के लिए सेलेनियम, विटामिन 'ई' दिया जाना चाहिए। दूध बुखार के मामले में, आहार के कैटायन एनायन डिफरेंस की बारीकी से निगरानी की जानी चाहिए, यानी प्रसव के करीब आने वाली गायों को खिलाने के लिए ऋणायन अधिक होना चाहिए।

श्रीअन्न हैं पोषक तत्वों से भरपूर

शेषनाथ मिश्रा, तेजपाल सिंह, चन्द्रपाल सिंह, विनय कुमार और **लक्ष्मी कान्त**

"विश्व पोषक तत्वों से भरपूर अनाज के अभाव की समस्या से जूझ रहा है। भारत जैसे विकासशील देश और अफ्रीकी प्रायद्वीप में यह समस्या अधिक जटिल है। यहां कुपोषण का सीधा प्रभाव मनुष्य पर विभिन्न प्रकार के रोगों के रूप में देखा जा सकता है। तेजी से हो रहे जलवायु परिवर्तन ने परंपरागत उत्पादित होने वाली अनाज की फसलों जैसे-गेहूं व धान जिन्हें ज्यादा सिंचाई की आवश्यकता होती है, को प्रभावित किया है। वहीं अब पोषण से समृद्ध श्रीअन्न की ओर रुख किया जा रहा है। मक्का व ज्वार सहित ये फसलें श्रीअन्न के रूप में जानी जाती हैं। श्रीअन्न फसलों में सूखे को सहन करने की क्षमता गेहूं व धान से ज्यादा है। ये फसलें आसानी से वर्षा आधारित क्षेत्रों में पनप जाती हैं। श्रीअन्न में सूक्ष्म पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। ये अनाज मनुष्य की रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाते हैं और इनमें एंटीऑक्सीडेंट गुण पाये जाते हैं। ये उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, कैंसर, मधुमेह और ट्यूमर से ग्रसित रोगियों के लिए लाभकारी हैं। भारत की अधिकांश भूमि वर्षा आधारित व शुष्क है, जहां पर श्रीअन्न की खेती संभव है। अत: ऐसे क्षेत्रों में श्रीअन्न की फसलों की खेती को बढ़ावा देकर वर्तमान व भविष्य में आने वाली चुनौतियों जैसे कि कुपोषण की समस्या को कम कर सकते हैं। इसके साथ ही खाद्यान्न की समस्या को भी सुनिश्चित कर सकते हैं।"

भारत, श्रीअन्नों के उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर है। वहीं आमजन में इसमें पाये जाने वाले पौष्टिक गुणों के प्रति जागरूकता का अभाव है। श्रीअन्नों में धान एवं गेहूं की तुलना में लवण पाचक फाइबर और पोषक तत्व भी ज्यादा होते हैं। इनमें 9-14 प्रतिशत तक प्रोटीन व 70-80 प्रतिशत तक कार्बोहाइड्रेट पाये जाते हैं। श्रीअन्न फसलें कम अवधि की होती हैं।

श्रीअन्न फसलों की प्रजातियों में पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इनका उपयोग करके वर्तमान में कुपोषण जैसी समस्याओं का निवारण किया जा सकता है। ये फसलें वर्षा आधारित क्षेत्रों व शुष्क क्षेत्रों में आसानी से उग जाती हैं। अत: ये फसलें भविष्य में खाद्य सुरक्षा को भी सुनिश्चित करती हैं। भारत में लोगों को अपनी आहार श्रृंखला में ज्यादा से ज्यादा श्रीअन्न को शामिल करने के लिए अधिक प्रयास करने की जरूरत है।

कृषि विज्ञान विद्यालय, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला-244236 (उत्तर प्रदेश)

प्रजातियां व किस्में

फसल: रागी या फिंगर मिलेट

किस्में

- सीएफएमवी-2
- सीएफएमवी-3
- फुले केसरी
- बिरसा मरूआ
- दापोली
- छत्तीसगढ़ रागी-3
- वीएल-382

गुण

वीएल-378 रागी, जिसे मंडुआ या फिंगर मिलेट के नाम से भी जाना जाता है। एक ऐसा बीज है जिसमें फाइबर, कैल्शियम और आयरन भरपूर मात्रा में पाया जाता है। यह उत्तराखण्ड के पहाड़ी इलाकों में आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसकी खेती कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु,

ब्राउनटॉप मिलेट

किस्में

- एचबीआर-2
- जीबीयूबीटी-6

गुण

ब्राउनटॉप मिलेट्स को हिन्दी में हरी कंगनी भी कहा जाता है। इसका वानस्पतिक नाम *ब्राचियारिया रामोसा* (एल.) स्टैफ या *यूरोकलोआ रामोसा* (एल.) *आरडी वेबस्टर* है। यह एक कम प्रचलित फसल है, जिसे भारत के कुछ ही राज्यों में उगाया जाता है। इसे ज्यादातर कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में उगाया जाता है। इसे कन्नड़ में कोरली, तेलगु में अंडु कोर्रालु और तमिल में पाला पुल के नाम से जाना जाता है। ब्रॉउनटॉप का उपयोग अनाज के रूप में, पक्षियों को खिलाने के लिए और उद्योगों में कच्ची सामग्री के रूप में भी किया जाता है। इसका उपयोग खिचड़ी, डोसा, उपमा आदि व्यंजन बनाने में किया जाता है।

ओडिशा और महाराष्ट्र के शुष्क क्षेत्रों में भी की जाती है।

फॉक्सटेल मिलेट

किस्में

- सूर्यानन्दी
- रेनाडु
- गरूणम
- एटीएल-1
- राजेन्द्र कौनी-1
- एसआईए-3156

फॉक्सटेल मिलेट

गुण

फॉक्सटेल मिलेट को हिन्दी में कंगनी कहते हैं। यह वार्षिक घास का पौधा है जो स्वास्थ्य के लिए फायेदमंद बीज उत्पादित करता है। कंगनी में फाइबर, प्रोटीन और कई तरह में मिनरल्स भरपूर मात्रा में होते हैं। यह दुनिया का सबसे पुराना मिलेट है और भारत समेत कई देशों में उगाया जाता है। कंगनी के बीजों का रंग अलग-अलग हो सकता है। इन पर पतला छिलका होता है, जो आसानी से उतर जाता है। कंगनी के बीजों का स्वाद हल्का मीठा होता है और इनका सेवन गेहूं या धान के साथ किया जा सकता है। इसकी खेती मुख्यत: आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु व कर्नाटक में की जाती है।

प्रोसो मिलेट

किस्में

- प्रताप चीना-01
- पीआरसी-01
- टीएनएमयू-202
- टीएनएमयू-151
- टीएनएमयू-64
- डीएच-48
- सीओ-05
- एटीएल-01

प्रोसो मिलेट

गुण

प्रोसो मिलेट को हिन्दी में छेना या पुनर्नवा कहते हैं। प्रोसो मिलेट को आहार के रूप में शामिल किया जाता है। इसके अलावा पक्षियों के लिए बीज और इथेनॉल बनाने के लिए भी इसका इस्तेमाल किया जाता है। प्रोसो मिलेट के दानों में विटामिन, खनिज और अमीनो अम्ल होते हैं। इसके साथ ही इसमें स्टार्च और एंटीऑक्सीडेंट भी होते हैं। इसके बीजों में ऐसे घटक होते हैं, जो रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को दुरूस्त करते हैं और लीवर क्षति को कम करते हैं। इसके अलावा इसमें लेसिथिन भी होता है, जो तंत्रिका स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है।

सारणी 1. श्रीअन्न के पोषक घटक (प्रति ग्राम)

क्र.सं.	श्रीअन्न का प्रकार	प्रोटीन (ग्राम)	फाइबर/रेशा (ग्राम)	आयरन (मि.ग्रा.)	कैल्शियम (मि.ग्रा.)	लवण (ग्राम)
1	ज्वार	10	4	2.6	54	1.6
2	बाजरा	10.6	1.3	16.9	38	2.3
3	कोदो मिलेट	8.3	9	0.5	27	2.6
4	फॉक्सटेल मिलेट (कंगनी)	12.3	8	2.8	31	3.3
5	पुनर्नवा	12.5	2.2	0.8	14	1.9
6	लिटिल मिलेट/कुटकी	7.7	7.6	9.3	17	1.5
7	फिंगर मिलेट/रागी	7.3	3.6	3.9	344	2.7
8	बार्नयार्ड मिलेट (सांवा)	11.2	10.1	15.2	11	4.4
9	टेफ्फ	13	08	7.6	180	0.85
10	फोनिओ	11	11.3	84.8	18	5.31
11	ब्राउनटॉप मिलेट	11.5	12.5	0.65	0.01	4.2

कोदो मिलेट

किस्में

- टीएनएयू-86
- केएमवी-545
- केएमवी-551
- गुजराज कोदो मिलेट-04
- सीआरके-369-25

गुण

भारत में कोदो मिलेट को ज्यादातर दक्कन क्षेत्रों में उगाया जाता है। इसकी खेती हिमालय की तलहटी तक फैली हुई है। जब यह फसल पककर तैयार होती है, तो इसके दाने लाल और भूरे रंग के हो जाते हैं। कोदो मिलेट पाचन फाइबर एवं आयरन, एंटीऑक्सीडेंट जैसे खनिजों से भरपूर है। इसमें फॉस्फोरस की मात्रा अन्य मिलेट्स की तुलना में कम होती है। इसमें एंटीऑक्सीडेंड मात्रा ज्यादा होती है। यह एक पोषक अनाज है, जिसे शुगर फ्री धान या अकाल का अनाज भी कहा जाता है। कोदो मिलेट में वसा की मात्रा बेहद कम और फाइबर की मात्रा ज्यादा होती है। इसे खाने से वजन नहीं बढ़ता है। यह ट्राइग्लिसराइड्स और कोलेस्ट्रोल के स्तर को बढ़ने से रोकता है।

कोदो मिलेट (कोडरा)

बार्नयार्ड मिलेट

किस्में

- वीएल मदिरा-207
- डीएचबीएम-93-2
- डीएचबीएम-23-3
- फुले भारती-1
- एमडीयू-01
- सीओ-02
- प्रताप सांवा-08
- (ईआर-64)

बार्नयार्ड मिलेट

गुण

इसे हिन्दी में सांवा कहते हैं। इसका वानस्पतिक नाम *इचिनोक्लोआ फुर्मेंटेसिया* है। बार्नयार्ड मिलेट एक अल्पावधि फसल है। प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी उगाई जा सकती है। यह कई तरह के जैविक और अजैविक तनावों को सहन कर सकती है। भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में बार्नयार्ड मिलेट की खेती की जा सकती है। इसके अलावा अनुपजाऊ भूमि पर भी इसकी खेती की जा सकती है, जहां धान नहीं उगाया जा सकता है। बार्नयार्ड मिलेट के दानों को बाजरे के साथ मिलाकर भी खाया जा सकता है।

बार्नयार्ड मिलेट में कई तरह के पोषक तत्व होते हैं। जैसे कि विटामिन, खनिज, आहार, फाइबर, प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट, इसमें आयरन, कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और विटामिन-बी भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं। नवरात्रि जैसे व्रतों के दौरान इसका इस्तेमाल डोसा, ढोकला और धान पुलाव जैसे कई व्यंजन बनाने में किया जाता है। इसमें मौजूद पोषक तत्वों की वजह से यह व्रत के दौरान भूख मिटाने के लिए अच्छा माना जाता है। इसकी खेती मुख्यतः उत्तराखण्ड, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार में होती है।

ज्वार

किस्में

- सीएसवी-27
- सीएसवी-41
- सीएसवी-15
- सीएसवी-23
- सीएसएच-30
- सीएसएच-41
- सीएसएच-27
- सीएसएच-16
- सीएसएच-15
- आरएस-29

गुण

ज्वार को मोटे दानों का राजा भी कहते हैं। इसकी तासीर गर्म होती है। ज्वार में मिनरल, प्रोटीन और विटामिन-बी कॉम्प्लेक्स जैसे कई पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अलावा ज्वार में काफी मात्रा में पोटेशियम, फॉस्फोरस, कैल्शियम और आयरन भी होता है। इसे पशु और मानव दोनों के लिए उगाया जाता है। ज्वार का उत्पादन मुख्यतः महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, तेलांगाना, गुजरात और हरियाणा में होता है।

ज्वार

बाजरा

किस्में

- आईसीएमए-94444
- आर-56

बाजरा

लिटिल मिलेट

किस्में

- सीएलएमवी-1 (जैकर सामा-1)
- एलएमवी-518
- छत्तीसगढ़ सोन कुटकी
- जीएनवी-3
- फुले एकादशी
- जवाहर कुटकी-4 (जेके-4)

गुण

लिटिल मिलेट को हिन्दी में कुटकी कहते हैं। यह एक छोटा सा श्रीअन्न है, इसे भारत में 2100 मीटर की ऊंचाई तक उगाया जाता है। यह चीना/प्रोसो मिलेट की एक प्रजाति है। कुटकी के बीज चीना/प्रोसो मिलेट की तुलना में बहुत छोटे होते हैं। कुटकी में कार्बोहाइड्रेट, फेनोलिक और एंटीऑक्सीडेंट तत्व प्रचुर मात्रा में होते हैं। ये मधुमेह, कैंसर, मोटापा जैसे मेटाबॉलिक संबंधी विकारों को रोकने में मदद करते हैं। कुटकी में प्रोटीन, फाइबर, विटामिन और मिनरल्स भी भरपूर मात्रा में होते हैं। इसकी खेती कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, ओडिशा, बिहार, हिमाचल प्रदेश और महाराष्ट्र में की जाती है।

गुण

बाजरा एक ऐसी फसल है, जिसे पशु और मानव दोनों के लिए उगाया जाता है। इसके दानों में पोषक तत्व जैसे-प्रोटीन, फाइबर प्रचुर मात्रा में होते हैं। यह सबसे ज्यादा बोया जाने वाला अनाज है। इसकी खेती मुख्यतः पश्चिमी राजस्थान में ज्यादा होती है। इसके अलावा महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब और आंध्र प्रदेश में भी की जाती है। यह फॉस्फोरस और कैल्शियम का एक समृद्ध स्रोत है, जो पीक बोन डेंसिटी प्राप्त करने में भी सहायता करता है।

अर्ध-शहरी खेती के लाभ

वीर सिंह[1]**, राजेश सिंह चौहान**[2]**, आकाश**[3] और **कमल सिंह**[4]

"शहरीकरण के बढ़ते स्तर और ग्रामीण इलाकों से लोगों के शहरों की ओर बढ़ते प्रवास ने शहरों के आसपास के क्षेत्रों में कृषि की बढ़ती आवश्यकता को जन्म दिया है। अर्ध-शहरी या पेरी-अर्बन खेती इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण हो गई है। यह खेती शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच एक कड़ी के रूप में उभरती है, जहां कृषि उत्पाद शहरी आबादी की बढ़ती मांग को पूरा करने में मदद करते हैं। यह प्रणाली न केवल आहार की आपूर्ति को संतुलित करती है, बल्कि पर्यावरणीय और सामाजिक लाभ भी प्रदान करती है। पेरी-अर्बन खेती का मुख्य उद्देश्य शहरी क्षेत्रों के आसपास के इलाकों में टिकाऊ कृषि प्रणालियों का विकास करना है, जिससे स्थानीय आबादी के लिए खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित हो सके और पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा मिल सके। यह प्रणाली खेती शहरों के आसपास की भूमि में होती है, जहां कृषि, औद्योगिक और आवासीय उपयोग के लिए भूमि की प्रतियोगिता होती है। यह क्षेत्रीय खाद्य प्रणालियों को मजबूत करने, जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने और शहरी विकास के दबाव को कम करने में मददगार हो सकती है।"

अर्ध-शहरी (पेरी-अर्बन) खेती शहरीकरण और खाद्य सुरक्षा की चुनौतियों का समाधान करने का एक सशक्त माध्यम है। यह खेती शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में खाद्य उत्पादन को बढ़ावा देने, पर्यावरण संरक्षण को सुनिश्चित करने और सामुदायिक कल्याण को सुधारने का एक प्रभावी तरीका हो सकती है।

[1]प्रवक्ता; [2]प्रोफेसर; [3]सहायक प्रोफेसर, सस्य विज्ञान विभाग, आर.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, धामपुर, बिजनौर (उत्तर प्रदेश); [4]सहायक आचार्य, आई.एफ.टी.एम. यूनिवर्सिटी, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश)

आर्थिक और सामाजिक लाभ

शहरी खाद्य सुरक्षा

शहरों में बढ़ती जनसंख्या के कारण खाद्य सुरक्षा एक बड़ा मुद्दा बनता जा रही है। पेरी-अर्बन खेती इस समस्या का समाधान प्रदान करती है। यह शहरी क्षेत्रों के आसपास ताजे और स्थानीय खाद्य उत्पादों की उपलब्धता सुनिश्चित करती है। इससे शहरी आबादी को स्थानीय स्तर पर उत्पादित और ताजे खाद्य उत्पाद आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। इसके अलावा, आपूर्ति शृंखला को छोटा करने से खाद्य अपशिष्ट में कमी आती है और आहार की गुणवत्ता भी बढ़ती है।

रोजगार के अवसर

पेरी-अर्बन खेती रोजगार के नए अवसर उत्पन्न करती है। इसमें न केवल कृषि से जुड़े रोजगार शामिल होते हैं, बल्कि इससे

जुड़े अन्य क्षेत्र जैसे कि प्रसंस्करण, विपणन और वितरण के लिए भी नए अवसर उत्पन्न होते हैं। शहरी क्षेत्रों में बेरोजगारी एक बड़ी समस्या होती है। इस तरह की खेती स्थानीय युवाओं और बेरोजगारों को रोजगार प्रदान कर सकती है।

सामुदायिक विकास और स्वास्थ्य

पेरी-अर्बन खेती से जुड़े समुदायों को स्वास्थ्य संबंधी लाभ भी मिलते हैं। इस प्रणाली के अंतर्गत स्थानीय उत्पादन से ताजे और पौष्टिक खाद्य उत्पाद उपलब्ध होते हैं, जो शहरी क्षेत्रों में लोगों के स्वास्थ्य को सुधारते हैं। इसके अलावा, पेरी-अर्बन खेती सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देती है, जहां लोग एकसाथ मिलकर खेती करते हैं और एक-दूसरे की मदद करते हैं। इससे सामाजिक बंधनों को मजबूत करने में मदद मिलती है।

खाद्य मूल्य स्थिरता

शहरी क्षेत्रों के आसपास ताजा उत्पादों की उपलब्धता से खाद्य कीमतों में स्थिरता बनी रहती है। दूर-दराज के क्षेत्रों से खाद्य उत्पाद लाने के लिए परिवहन की लागत और समय अधिक लगता है। इससे कीमतों में अस्थिरता आती है। पेरी-अर्बन खेती इस अस्थिरता को कम कर सकती है। यह प्रणाली शहरी उपभोक्ताओं को सस्ते और ताजा खाद्य उत्पाद प्रदान कर सकती है।

चुनौतियां और समाधान

नीतिगत ध्यान की कमी

अभी भी कई नीति निर्माता पेरी-अर्बन खेती को गंभीरता से नहीं लेते हैं। इसे केवल एक शौक के रूप में देखते हैं, जबकि इसके लाभ कई हैं। इसे बढ़ावा देने के लिए उचित नीति और समर्थन की आवश्यकता है। सरकारों को इस दिशा में काम करना होगा और इसे कृषि और शहरी विकास की मुख्यधारा में लाना होगा।

खाद्य सुरक्षा की भरपूर संभावनाएं

भूमि उपयोग का दबाव

शहरों के तेजी से विस्तार के कारण पेरी-अर्बन क्षेत्रों में भूमि की उपलब्धता घटती जा रही है। भूमि के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, खासकर आवासीय, औद्योगिक और कृषि उपयोग के लिए। इससे खेती के लिए उपलब्ध भूमि कम हो रही है। इसके समाधान के लिए शहरी योजनाकारों को भूमि उपयोग की रणनीतियों में बदलाव करना होगा और अर्ध-शहरी खेती के लिए विशेष क्षेत्रों का निर्धारण करना होगा।

जल संसाधनों का प्रबंधन

शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में जल संसाधनों की कमी एक बड़ी समस्या हो सकती है। खेती के लिए आवश्यक पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करना एक चुनौती हो सकती है, खासकर उन क्षेत्रों में जहां पानी की कमी होती है। इसके समाधान के लिए जल संरक्षण और पुनर्चक्रण की तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

पर्यावरणीय लाभ

कार्बन फुटप्रिंट में कमी

पेरी-अर्बन खेती का सबसे महत्वपूर्ण पर्यावरणीय लाभ यह है कि यह उत्पादों की आपूर्ति के लिए आवश्यक परिवहन की दूरी को कम करती है। शहरों के पास उत्पादन होने के कारण, ताजा खाद्य उत्पादों को दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों से लाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे ईंधन की बचत होती है और कार्बन फुटप्रिंट में कमी आती है। इसके अलावा, यह ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को भी कम करती है। कम दूरी की परिवहन प्रक्रिया में कम ऊर्जा का उपयोग होता है।

स्थानीय जलवायु सुधार

पेरी-अर्बन खेती के अंतर्गत शहरी क्षेत्रों के आसपास हरियाली और पौधों की संख्या बढ़ने से स्थानीय जलवायु में सुधार होता है। यह न केवल वायुमंडल में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करता है, बल्कि तापमान को भी नियंत्रित करता है। अध्ययन ये भी बताते हैं कि खेती से जुड़े क्षेत्र आसपास बढ़ते तापमान को कम कर सकते हैं। एक प्रकार का 'कूलिंग इफेक्ट' उत्पादित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, बेंगलुरु और चेन्नई जैसे शहरों में अर्ध-शहरी खेती से भूमि सतह के तापमान में कमी देखी गई है।

मृदा का संरक्षण और जैव विविधता

पेरी-अर्बन खेती, यदि ठीक से की जाए, तो यह मृदा की गुणवत्ता में सुधार कर सकती है। जैविक खेती और सतत कृषि तकनीकों के उपयोग से मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा, यह खेती पारंपरिक कृषि प्रणालियों को पुनर्जीवित करने और स्थानीय पौधों और पशुओं की प्रजातियों को संरक्षित करने में मदद करती है। जैव विविधता में वृद्धि से न केवल पर्यावरण को फायदा होता है, बल्कि यह कृषि उत्पादकता को भी बढ़ाती है।

भविष्य

स्थानीय उत्पादन और खपत

भविष्य में पेरी-अर्बन खेती स्थानीय उत्पादन और खपत पर आधारित होगी। शहरों के पास खेती करने से न केवल खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि पर्यावरण में सुधार और पोषण भी बरकरार रहेगा। इससे शहरी क्षेत्रों में लोगों को ताजा और पोषक आहार प्राप्त करने का अवसर मिलेगा।

स्मार्ट खेती

भविष्य में पेरी-अर्बन खेती को और अधिक कारगर बनाने के लिए स्मार्ट कृषि तकनीकों का उपयोग किया जा सकता है। इसमें ड्रोन, सेंसर्स और डेटा आधारित निर्णय लेने की प्रक्रिया शामिल होगी। इससे उत्पादकता बढ़ाने और जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन में भी मदद मिलेगी।

नीति और शासन

पेरी-अर्बन खेती को बढ़ावा देने के लिए नीतिगत समर्थन अत्यंत आवश्यक है। सरकारों को इस दिशा में पहल करनी चाहिए, ताकि किसानों को कृषि उपकरण, बीज और अन्य संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके। इसके अलावा, भूमि सुधार नीतियों के माध्यम से खेती के लिए उचित भूमि का प्रबंधन किया जाना चाहिए।

कुरमुला कीट का प्रभावी प्रबंधन

अंशुमन सेमवाल[1], निकिता चौहान[2], ओजस चौहान[1], राकेश कुमार[1] और **विश्व गौरव सिंह चंदेल[1]**

कुरमुला भारत में एक मुख्य हानिकारक कीट के रूप में जाना जाता है। यह कीट विभिन्न राज्यों जैसे-हिमाचल प्रदेश,पंजाब, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में बहुतायत रूप में पाया जाता है। यह कीट मौसम तथा फसल की उपलब्धता के अनुसार काफी हानि पहुंचाता है। मुख्यत: यह कीट मानसून के समय पर सर्वाधिक क्षतिकारी होता है। भारत में यह कीट पर्वतीय तथा मैदानी दोनों इलाकों में काफी क्षति पहुंचाता है। विभिन्न राज्यों में उगाई जाने वाली फसलों में अत्यधिक हानि पहुंचाने के कारण इसे कई राज्यों जैसे-उत्तराखंड में राजकीय/राज्य कीट का दर्जा भी दिया गया है। यह कीट पर्वतीय क्षेत्रों में वर्षा आधारित विभिन्न फसलों में 20 से 75 प्रतिशत तक की हानि पहुंचाता है। मैदानी क्षेत्रों में यह कीट फसलों को 90 प्रतिशत तक की हानि पहुंचाता है। इस कीट को एकीकृत कीट नियंत्रण प्रणाली से नियंत्रित किया जा सकता है।

कुरमुला कीट को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से जाना जाता है। इसके गिडार (ग्रब) को कुरमुला सफेद गिडार तथा घोलुवा कीट आदि नामों से जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे व्हाइट ग्रब के नाम से जाना जाता है।

कुरमुला कीट के प्रौढ़ मानसून में पहली बरसात के बाद जमीन से बाहर निकलकर फसलों/पौधों पर एकत्रित होकर प्रजनन करते हैं। प्रजनन के तुरंत बाद प्रौढ़ मादा जमीन के अंदर (20-25 सें.मी.) जाकर अंडे देती है। अंडे से निकले कुरमुला (ग्रब) सफेद रंग के होते हैं तथा मुंह गहरे भूरे रंग का होता है। इनकी आकृति अंग्रेजी के 'सी' अक्षर के समान होती है।

ग्रब अवस्था जून-जुलाई (मानसून) से लेकर अक्टूबर तक सक्रिय रहकर अपने नुकीले चबाने वाले मुखांगों से विभिन्न फसलों की जड़ों को काटकर फसलों में मृदा के पोषक तत्वों तथा जल के प्रवाह तंत्र को पूर्ण रूप से अवरुद्ध कर देते हैं। इससे उस पौधे की मृत्यु हो जाती है तथा किसान की आय में भरी गिरावट आती है। प्राय: यह देखा गया है कि कुरमुला कीट का उचित नियंत्रण न करने पर उत्पादन में भारी कमी या शत प्रतिशत का नुकसान भी होता है।

जीवनचक्र

कुरमुला कीट का वयस्क भूरे रंग का होता है, जो जून-जुलाई की बरसात के तुरंत बाद सायंकालीन समय में मृदा से निकलकर पोषक पौधों की कोमल पत्तियों या टहनियों पर एकत्र होते हैं।

नर एवं मादा 15-20 मिनट तक प्रजनन करने के बाद पोषक पौधों जैसे-अखरोट, पांगर, सेब, खुमानी, नाशपाती की पत्तियों को खाते हैं। मध्यरात्रि के बाद तथा सुबह से पहले वयस्क पुन: मृदा के अंदर चले जाते हैं, जहां वयस्क मादा प्रजनन के 4-6 दिनों के बाद मृदा में 7-9 सें.मी. की गहराई पर 10-40 सफेद, गोलाकार अंडे देती है, जो इकट्ठा न होकर अलग-अलग बिखरे रहते हैं। ये अंडे लगभग 7-10 दिनों में फूटते हैं, जिसमें से सफेद पीले रंग के प्रथम अवस्था के ग्रब (गिडार) निकलते हैं, जिनकी लम्बाई 7-8 मि.मी. तक होती है।

प्रथम अवस्था के गिडार के मुखांग अधिक विकसित नहीं होते हैं, जिससे ये केवल पौधों की कोमल जड़ों को तथा मृदा के कार्बनिक पदार्थों का सेवन कर 40-45 दिनों में द्वितीय अवस्था में पहुंचते हैं तथा द्वितीय अवस्था के 30-45 दिनों के पश्चात ये गिडार तृतीय अवस्था में पहुंचते हैं।

तृतीय अवस्था में इनकी लम्बाई 40 मि.मी. तक होती है। द्वितीय एवं तृतीय अवस्था के गिडार अपने काटने एवं चबाने वाले नुकीले मुखांगों से गेहूं, गोभी, सरसों, मिर्च, राई,

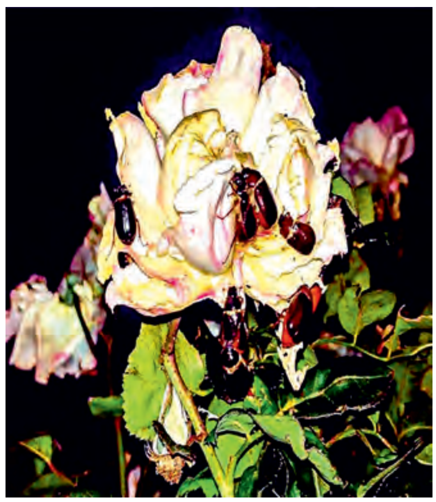

फसल पर कुरमुला कीट का प्रकोप

[1]कीट विज्ञान विभाग, डा. वाई.एस.पी.यू.एच.एफ. सोलन; [2]स्कूल ऑफ एग्रीकल्चर, ग्राफिक एरा हिल यूनिवर्सिटी, देहरादून

मंडुआ, झंगोरा की जड़ों को काटकर पौधे के सतत विकास को रोक देते हैं, जिससे पौधे पीले पड़कर सूख जाते हैं।

तृतीय अवस्था के पश्चात ये गिडार 60 सें.मी. नीचे जाकर सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं। प्रथम अवस्था से तृतीय अवस्था तक गिडार की कुल समयावधि 215-265 दिनों की होती है। सुषुप्तावस्था के बाद गिडार मार्च-अप्रैल माह के मध्य में 15-20 सें.मी. की गहराई पर आकर प्यूपा अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। प्यूपा अवस्था एक निष्क्रिय अवस्था है, जिसमे कीट कोई गतिविधि नहीं करता है तथा न ही पौधों को कोई नुकसान पहुंचाता है। यह कीट प्यूपा अवस्था में 30 दिनों तक रहता है। प्यूपा के बाद अनुकूल वातावरण मिलने पर यह वयस्क में परिवर्तित हो जाता है। इसमें वयस्क की लम्बाई एवं चौड़ाई क्रमश: 20-25 मि.मी. तथा 10-15 मि.मी. तक होती है। इस कीट का जीवनकाल एक वर्ष का होता है।

कुरमुला कीट की जीवन अवस्थाएं

प्रबंधन

- वयस्क जब बरसात के बाद प्रजनन हेतु पौधों की पत्तियों पर एकत्रित होते हैं, उस समय पौधों के नीचे किसी तिरपाल को रखकर उस वृक्ष को जोर से हिलाकर सभी कीटों को तिरपाल में एकत्र कर नष्ट करना चाहिए।
- खेतों में सूखे अथवा पूर्ण विघटित गोबर का ही प्रयोग करना चाहिए। कच्चे गोबर का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए। कुरमुला कीट के प्रथम अवस्था के गिडार कच्चे गोबर पर भक्षण करते हैं।
- ग्रब की प्रथम, द्वितीय, तृतीय अवस्था मृदा में रहती है। ग्रब का शरीर अत्यधिक कोमल होने के कारण यह सूर्य की किरणों की गर्मी को सहन नहीं कर पाता है इसलिए ग्रीष्मकालीन समय में खेतों की गहरी जुताई करने से ग्रब सूर्य के प्रकाश तथा चिड़ियों का शिकार हो जाता है।
- वयस्क रात्रिचर होने के कारण प्रकाशपुंज की ओर आकर्षित होता है इसलिए खेतों में प्रकाश प्रपंच का उपयोग करना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में घर के बाहर जल रहे प्रकाश स्रोतों या बल्बों पर आये हुए बीटल्स को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।
- मानसून के बाद होने वाली सस्य क्रियाओं जैसे-निराई-गुड़ाई करते समय अत्यधिक संख्या में ग्रब मिलते हैं। इन्हें एक पात्र में एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए।
- जिन क्षेत्रों में कुरमुला कीट द्वारा काफी अधिक हानि होती है, वहां पर सोयाबीन या रामदाना आदि की बुआई करना कृषक के हित में लाभप्रद सिद्ध होता है। इन फसलों में कुरमुला कीट की क्षति का स्तर काफी कम होता है।
- *मेटाहाइजियम एनीसाप्ली* तथा *ब्युवेरिया बेसियाना* एक कीटरोगजनक कवक/फफूंद है। इसके 1.0×10^{14} कोनिडिया प्रति ग्राम वाले फार्मूलेशन का 3.0 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से प्रयोग करने पर कीट की संख्या में काफी कमी आती है। 24 डिग्री सेल्सियस से 28 डिग्री सेल्सियस और उच्च सापेक्ष आर्द्रता इस कवक के गुणन के लिये अनुकूल तापमान होता है। कीट के नियंत्रण के लिए कीटरोगजनक कवक/फफूंद को मृदा में शाम के समय मिश्रित करना चाहिये।
- बुआई से पूर्व खेत में इमिडाक्लोप्रिड 200 एसएल कीटनाशक को 0.048 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व की मात्रा को प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करने से ग्रब प्रभावी तरीके से नियंत्रण हो जाता है।
- बीजोपचार के लिए क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. के 7 से 12 मि.ली. को 1 कि.ग्रा. खरीफ फसल के बीजों के लिए उपयुक्त है।
- इसी प्रकार सोयाबीन तथा अन्य खरीफ फसलों में ग्रब के नियंत्रण के लिए थियामेथोक्साम 25 डब्ल्यू एस नामक कीटनाशी का 1.2 लीटर मात्रा का प्रयोग प्रति हैक्टर की दर से उपयोग करना चाहिये।

क्षति के लक्षण

कुरमुला कीट की गिडार (ग्रब) अवस्था फसल को सर्वाधिक नुकसान पहुंचाती है। यह कीट जुलाई से अक्टूबर में सर्वाधिक नुकसान पहुंचाता है। इस कीट की गिडार प्रथम अवस्था फसल की मुलायम जड़ों पर भक्षण करती है, परन्तु मुलायम जड़ों की अनुपस्थिति में मृदा के कार्बनिक पदार्थो पर आहार करके द्वितीय अवस्था में पहुंचती है। इस अवस्था में गिडार के मुखांग काफी अधिक विकसित हो जाते हैं।

द्वितीय एवं तृतीय अवस्था के गिडार सर्वाधिक सक्रिय रहते हैं तथा अपने नुकीले दांतों से पौधों/फसलों की जड़ों पर भक्षण करते हैं। इससे पौधों में पौष्टिक पदार्थो के सुचारु परिवहन न होने के कारण पौधे पीले पड़ने लगते हैं तथा कुछ समय पश्चात पौधे पूर्ण रूप से सूख जाते हैं। अगर क्षतिग्रस्त पौधे को कम बल प्रयोग कर हाथ से खींचा जाये, तो जड़ों के कुरमुला कीट द्वारा काटे जाने के कारण जड़ विहीन पौधा आसानी से हाथ में आ जाता है। कुरमुला कीट का अत्यधिक प्रकोप होने के कारण कभी-कभी ग्रब या गिडार भी पौधे के साथ ऊपर आ जाते हैं।

बहुभक्षी प्रौढ़ रात्रिचर होने के कारण रात्रि में विभिन्न फलों जैसे खुमानी, पल्म, सेब, अखरोट और फूलों जैसे जीनिया, गुलाब, डहेलिया तथा वन पौधों जैसे बांज, तुन, भीमल के फलों तथा पत्तियों को काटने का कार्य करते हैं। प्रौढ़ बहुभक्षी होने के कारण केवल पूर्णरूप से पके फलों तथा प्राय: पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं। इनके द्वारा लगभग सभी फलों सब्जियों इत्यादि का भक्षण किया जाता है अर्थात बहुभक्षी प्रकृति के होने के कारण इनके द्वारा फसल उत्पादन एवं आय को काफी अधिक नुकसान होता है।

नवजात पशुओं की देखभाल

आशुतोष कमल[1]**, वीकेश कुमार**[2] और **आनन्द कुमार**[3]

> "भारत में पशुओं के नवजात शिशुओं में मृत्युदर 60 प्रतिशत से अधिक होती है। अगर इनकी देखभाल समय से न हो तो यह दर और अधिक हो सकती है। अच्छे व स्वस्थ नवजात शिशु तभी पैदा होंगे, जब गाय अच्छी नस्ल की, स्वस्थ तथा अच्छे बैल से क्रॉस की गई हो। यदि पशुपालक इस पर ध्यान नहीं देते हैं, तो उन्हें दुर्बल और कमजोर तथा कम उत्पादकता के शिशु प्राप्त होंगे एवं विभिन्न कारणों से इन शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। अतः पालकों को गाय को क्रॉस करने से लेकर शावक के जन्म के 6 माह तक अच्छा रखरखाव करना चाहिए।"

नवजात पशुओं की देखभाल अच्छी तरह करना जरूरी है। शिशु के जन्म से लेकर हर कदम पर विशेष देखभाल की जरूरत होती है। पशु पालकों के लिए पशु शिशुओं की देखभाल करने हेतु महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार हैं:

बछड़ों की सफाई

नवजात के पैदा होने के तुरन्त बाद ही उसे भूसे की बोरी या जूट की बोरी से सही से साफ कर देना चाहिए। इसके आंख, नाक, कान तथा जनन अंगों को भी अच्छे से साफ करना चाहिए। इससे नवजात को देखने और सांस लेने जैसी सामान्य क्रिया करने में परेशानी नहीं होती है।

साफ करने के बाद नवजात को उसकी मां के सामने रखना चाहिए। इससे गाय शिशु को चाटकर साफ कर देती है। यदि कोई गाय अपने नवजात को नहीं चाट रही है, तो नवजात के ऊपर हल्का सेंधा नमक डाल देना चाहिए और गाय को चाटने देना चाहिए।

श्वास प्रक्रिया की जांच करना

कभी-कभी नवजात शिशु की नाक में गन्दगी जमी होने से एक झिल्ली बन जाती है। इससे नवजात को श्वास लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जन्म के तुरन्त बाद शिशु की नाक की सफाई कर देनी चाहिए तथा झिल्ली को हटा देना चाहिए।

कभी-कभी शिशु की श्वास रुक जाती है, ऐसे में नवजात को कृत्रिम विधि से श्वास देने का प्रबंधन करना चाहिए जैसे-नवजात की जीभ को बाहर खींचना चाहिए तथा शिशु को जूट की बोरी पर लिटाकर उसके पैरों को आगे-पीछे खींचना चाहिए, सीने को थपथपाना

[1]पशुपालन एवं दुग्ध विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश); [2,3]पशुपालन एवं दुग्ध विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

चाहिए तथा नवजात को थोड़ा ऊपर उठाकर पटक देना चाहिए। इससे नवजात की श्वास प्रक्रिया को सामान्य किया जा सकता है।

नवजात की सूंड/नाल काटना

श्वास प्रक्रिया की जांच के बाद शिशु की नाल को साफ तथा तेज जीवाणुरहित कैंची से 7-10 सें.मी. छोड़ते हुए काट देना चाहिए। कटे हुए नाल पर टिंक्चर आयोडीन लगा देना चाहिए। यदि किसी कारणवश टिंक्चर आयोडीन न हो तो उसकी जगह सरसों के तेल में देसी शराब मिलाकर लगाना चाहिए। नाल पर कीटाणु का प्रभाव अधिक होता है। अत: नाल का उपरोक्त दवाइयों से उपचार करना अति आवश्यक है। ऐसा 3 से 4 दिनों तक करना चाहिए। सामान्यत: सूंड/नाल 4 दिनों में सूख जाती है।

खुर साफ करना

नवजात शिशु में सामान्यत: स्वस्थ खुर जन्म के समय से ही होते हैं, परन्तु कभी-कभी खुरों के बीच में फैटी बॉडीज जमा रहती हैं, जो पीले रंग की दिखती हैं। यह मृत रूप में होती है, इसमें खून का संचार नहीं होता है, इसे साफ तेज चाकू से काटकर हटा देना चाहिए, ताकि नवजात को अपने पैरों पर खड़ा होने में परेशानी न हो।

नवजात को खड़ा होने में सहायता देना

गाय का बछड़ा यदि स्वस्थ पैदा हुआ है, तो वह स्वत: पैदा होने के 20-25 मिनट बाद खड़ा होने लगता है। ऐसे समय में उसे खड़े होने में हल्के हाथों से सहायता करनी चाहिए। मगर शिशु को खड़ा करके उसे पकड़े नहीं रहना चाहिए अन्यथा उसके पैर कमजोर और नाजुक पड़ सकते हैं। नवजात को खड़ा करते ही छोड़ दें, वह गिरेगा और फिर उठने का प्रयास करेगा और इसी क्रम में स्वयं ही खड़ा होना सीख जायेगा। यदि नवजात किसी कारणवश खड़ा नहीं हो पा रहा है, तो नजदीकी पशु चिकित्सक से उसके पैरों से संबंधित जांच करवानी चाहिए।

प्रतिकूल मौसम में बचाव

यद्यपि भारत जैसे गर्म देश में शिशु को सर्दी लगने की आशंका कम ही होती है, फिर भी प्रतिकूल मौसम में नवजात शिशु की लू, गर्मी व अत्यधिक सर्दी से रक्षा करनी चाहिए। यदि नवजात का जन्म ठण्ड के माह में हुआ हो, तो ध्यान रखें कि गाय नवजात को अधिक समय तक न चाटे इससे उसे ठण्ड लग सकती है। सर्दी लगने से नवजात को ज्वर और निमोनिया हो सकता है। यदि उन दिनों अत्यधिक ठण्ड हो, तो पशु और नवजात दोनों को आग के पास खड़ा रखें, ताकि उनको ठण्ड से बचाया जा सकें। लू और गर्मी से भी शिशु और गाय को बचाना अति आवश्यक है। अत्यधिक गर्मी होने पर पशुशाला में पंखे लगाने चाहिए। समय-समय पर ताजा पानी की व्यवस्था करनी चाहिए। ध्यान रहे पशुशाला में हवा का आवागमन बना रहे, जिसके लिए रोशनदान और खुला परिवेश होना चाहिए।

शावक को दूध पीना सिखाना

गाय के ब्याने के ढाई से 3 घंटे बाद शिशु को पहला गाय का दूध पिलाना चाहिए। इसके लिए शिशु को मां के थनों के पास ले जाकर उसके मुंह पर दूध की धार मारते हैं। अपनी अंगुली में दूध लगाकर शिशु के मुंह में लगाते हैं। इस प्रकार जब शावक दूध को चाटेगा तो उसे दूध के स्वाद का ज्ञान होगा। अब शावक धीरे-धीरे अंगुली को चूसना शुरू करेगा। ऐसा करने पर अंगुली मुंह से निकालकर धीरे-धीरे थन से दूध की धार शिशु के मुंह में मारते रहें और कुछ देर बाद उस शिशु के मुंह में थन को दबा दें। ऐसा करने पर नवजात थन को दबाना शुरू करेगा, जिससे दूध उसके मुंह में जाएगा और वह दूध पीने की कला सीख जायेगा।

नवजात बछड़े की सही देखभाल जरूरी

स्वच्छता का निरंतर ध्यान आवश्यक

नवजात पशु में टीके लगवाना

जन्म से 6 माह की उम्र तक शिशु को मुंहपका तथा गलघोंटू आदि के टीके वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने से पहले लगवा देने चाहिए। यदि पूर्व में शिशु की मां को टीके लगे हैं, तो शिशु के जन्म से 6 माह तक शिशु पर इन टीकों का असर रहता है। तब इस प्रकार के टीके 6 माह के बाद भी वर्षा ऋतु से पहले लगवाये जा सकते हैं।

नवजात के रहन-सहन की व्यवस्था

नवजात शिशु को उसकी मां के पास ही रखना चाहिए। विशेष रूप से वर्षा ऋतु में नमी के सम्पर्क में आने से शिशुओं को बचाने के लिए जमीन से एक फीट ऊंचे लकड़ी के कटघरे में रखें। ध्यान रहे कि पशुशाला का निर्माण सूखे व ऊंचे स्थान पर हो जहां वर्षा के पानी का ठहराव न हो, निकास के लिए उचित नाली व्यवस्था होनी चाहिए। शेड की सफाई रोजाना होनी चाहिए, ताकि पशु को कीटों के प्रकोप से बचाया जा सके। ठण्ड के समय बंद कमरों में शिशुओं को रखना चाहिए, जिसमें नीचे भूसे की तथा पराली की बिछावन का प्रयोग करना चाहिये। पीने हेतु साफ पानी ही देना चाहिए। कभी-कभी शिशु आपस में एक-दूसरे का शरीर चाटने लगते हैं। इससे उनके पेट में बाल पहुंच जाते हैं, जिससे उन्हें खराब पाचन और दस्त जैसी समस्या हो जाती है। इससे बचने के लिए शिशु के मुंह में छिक्की/मुचका बांध देते हैं। ऐसा 6-10 दिनों तक करना चाहिए सामान्यत: नवजात 10 दिनों बाद ऐसा करना बंद कर देता है।

गर्मी के दिनों में नवजात को प्रतिदिन नहलाना और ब्रशिंग करना चाहिए। प्रतिदिन एक से दो घंटा व्यायाम भी करवाना चाहिए, ताकि नवजात शिशु की शारीरिक बढ़वार अच्छी हो। ध्यान रहे कि गौशाला के अन्दर उचित वेंटिलेशन हो और वहां दीवारें ऊंची हो, ताकि जंगली पशुओं से उनका बचाव किया जा सके।

आहार व्यवस्था

जब बछड़ा 15 दिनों का हो जाये, तो उसे हरा नर्म चारा जैसे बरसीम, लोबिया, लूसर्न आदि खिलाया जा सकता है। शिशु धीरे-धीरे हरे चारे को बड़े चाव से खाने लगते हैं, क्योंकि हरा चारा स्वादिष्ट होता है। इसके साथ ही 5 से 10 ग्राम नमक या अन्य खनिज मिश्रण शिशु के मुंह में सुबह-शाम डाल देना चाहिए, ताकि शिशु हरे चारे को शीघ्र पचा सके एवं उनके शरीर में खनिज लवणों की मात्रा पूरी की जा सके एवं उनकी हड्डियों को मजबूत किया जा सकती है। धीरे-धीरे सूखा चारा भी शिशुओं को खिलाना चाहिए। छोटे शिशुओं को सर्दियों में 3-4 बार ताजा पानी पिलाना चाहिए तथा गर्मियों में पांच से छह बार पानी पिलाना चाहिए। एक वर्ष तक के शिशु को प्रतिदिन 200 से 500 ग्राम दाना तथा एक से डेढ़ वर्ष तक के शिशुओं को 1 से 1.5 कि.ग्रा. दाना खिलाना चाहिए।

यदि किसी अन्य कारणवश शिशु रोगी, हो जाये तो उसे नजदीकी पशु चिकित्सक को बुलाकर अवश्य दिखाएं, ताकि शिशु को गंभीर रोगों से बचाया जा सके।

बछड़े को खीस पिलाना

गाय के ब्याने के 2 घंटे बाद ही अच्छे से सफाई कर शिशु को खीस पिलानी चाहिए। खीस पीने से शिशु में रोगों से प्रतिरोध की क्षमता आ जाती है। बहुत से पशुपालक पशु के जेर डालने का इन्तजार करते हैं, जो सही नहीं है। कभी-कभी पशु जेर डालने में अत्यधिक समय लगा देते हैं। ऐसे में शिशु को ज्यादा देर भूखा नहीं रखा जा सकता। शिशु में एनीमिया होने की आशंका रहती है। नवजात शिशु का पहला आहार खीस ही होता है, शिशुओं को खीस पिलाना लाभदायक है। खीस में पाए जाने वाले मिनरल्स और विटामिन्स तथा रोग प्रतिरोधक लवण अच्छी मात्रा में पाए जाते हैं। खीस में साधारण दूध की तुलना में 5-6 गुना अधिक प्रोटीन पाया जाता है, जो नवजात के शरीर के बढ़वार के लिए अति आवश्यक है। खीस में लौह लवण सामान्य दूध की तुलना में 16 गुना अधिक पाया जाता है, जो नवजात में रक्त बनाने में सहायता करता है। खीस में कैरोटीन पाया जाता है, जिसे शिशु में आंखों के रोग और अंधापन नहीं होता। खीस में रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा प्रतिकारिता जैसे औषधीय गुण पाए जाते हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण दूध की तरह शिशु के लिए पूर्ण आहार होता है।

खीस देने में निम्न बातों को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है:

- नवजात के शारीरिक वजन के 1/10 ही खीस देनी चाहिए।
- नवजात के शारीरिक ताप के अनुसार ही खीस को गर्म कर देना चाहिए, जिससे ताप 100 से 102 डिग्री फारेनहाइट होना अच्छा माना जाता है। ठण्डी खीस से दस्त होने की आशंका होती है।

जम्मू और कश्मीर में प्राकृतिक खेती का विकास

बनारसी लाल[1], **हेमा त्रिपाठी**[2], **अमरीश वैद्य**[3] और **जगदीश कुमार**[4]

"प्राकृतिक खेती वह खेती होती है, जिसमें मानव द्वारा निर्मित किसी भी प्रकार का रसायन या कीटनाशक उपयोग में नहीं लाया जाता। इसके अंतर्गत प्रकृति के दौरान निर्मित उर्वरक और अन्य पेड़-पौधों के पत्तों की खाद एवं गोबर खाद को उपयोग में लाया जाता है। यह एक विविध प्रकार की कृषि प्रणाली है, जो फसलों, जीवों और वृक्षों को एकीकृत करके रखती है। हाल ही में भारत में प्राकृतिक खेती पर बहुत जोर दिया गया है। प्राकृतिक खेती एक प्राचीन प्रथा का अनुकूलन है, जो किसानों की प्रत्यक्ष लागत को कम करती है और उन्हें गौमूत्र एवं गाय के गोबर जैसे प्राकृतिक आदानों के उपयोग के लिए प्रोत्साहित करती है। इस तकनीक को कम जुताई की आवश्यकता होती है। यह प्रणाली रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एवं शाकनाशियों के उपयोग को पूरी तरह से खारिज कर देती है। यह मृदा में नमी बनाए रखने को बढ़ावा देने के लिए फसल अवशेषों की मल्चिंग का प्रयोग करती है। इसमें पानी की खपत को कम करने के लिए व्हापसा (मिट्टी का वातन) भी शामिल है। प्राकृतिक खेती में पानी की बचत करने की क्षमता है और यह लंबे समय में भारत की खाद्य सुरक्षा का समाधान कर सकती है। इस तकनीक को और अधिक अपनाने के लिए समय और नीति की आवश्यकता है। प्राकृतिक खेती की क्षमता का पूरी तरह से पता लगाने के लिए, सामाजिक गतिशीलता और वैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए अनुभवजन्य अनुसंधान की आवश्यकता है।"

प्राकृतिक खेती कृषि का अनूठा मॉडल है। यह पूर्णतः जो कृषि-पारिस्थितिकी पर निर्भर करता है। खेती की इस पद्धति का उद्देश्य उत्पादन की लागत को लगभग शून्य करना और पूर्व-हरित क्रांति शैली में लौटना है। इस तकनीक के अंतर्गत उर्वरक, कीटनाशक और गहन सिंचाई जैसे महंगे आदानों की कोई आवश्यकता नहीं होती है। प्राकृतिक खेती पशुधन और स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों पर आधारित रसायन मुक्त खेती का एक तरीका है।

[1]मुख्य वैज्ञानिक एवं प्रमुख, केवीके रियासी; [2]एसोसिएट निदेशक, प्रसार निदेशालय; [3]निदेशक, प्रसार निदेशालय; [4]कंप्यूटर प्रोग्रामर, केवीके रियासी, शेर-ए-कश्मीर कृषि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, जम्मू-180009 (जम्मू-कश्मीर)

जम्मू-कश्मीर का कृषि-पारिस्थितिकी तंत्र

जम्मू-कश्मीर एक पहाड़ी केंद्र शासित प्रदेश है, जिसमें लगभग 30 प्रतिशत क्षेत्र खेती के अधीन है। कृषि, जम्मू-कश्मीर की रीढ़ है। यह क्षेत्र अपने लगभग 70 प्रतिशत निवासियों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करता है। भारत में जोत का औसत आकार 1.08 हैक्टर है, जबकि जम्मू और कश्मीर में यह 0.54 हैक्टर है। कृषि विकास जम्मू-कश्मीर के समग्र विकास को अग्रदूत बनाता है। जम्मू-कश्मीर में उर्वरकों और अन्य कृषि रसायनों का उपयोग बढ़ने लगा है। इससे मृदा का स्वास्थ्य प्रभावित होता है।

प्राकृतिक खेती पारंपरिक भारतीय प्रथाओं से ली गई रसायनमुक्त कृषि की एक विधि है। इसने भारत के कई राज्यों में विशेष रूप से दक्षिणी राज्यों में व्यापक सफलता प्राप्त की है। सरकार इस खेती पर जोर दे रही है और भारतीय कृषि की मूल बातों पर वापस जाने का आह्वान कर रही है।

रसायनमुक्त उपज का वैज्ञानिक परीक्षण

कृषि-जलवायु क्षेत्र

जम्मू और कश्मीर भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में स्थित है। कठुआ, सांबा, जम्मू जिलों और कश्मीर की घाटी के कुछ निचले क्षेत्रों को छोड़कर इसका अधिकांश भूभाग पहाड़ी है। भौगोलिक विशेषताओं के आधार पर, जम्मू-कश्मीर के केंद्र शासित प्रदेश को दो मुख्य प्रभागों में विभाजित किया गया है। बाहरी हिमालय जिसमें पूरा जम्मू प्रांत और लघु हिमालय शामिल है जो पूरी कश्मीर घाटी का प्रतीक है।

केंद्र शासित प्रदेश के जम्मू संभाग में एक बहुत ही विविध परिदृश्य और जलवायु परिस्थितियां हैं। इसे 10 जिलों में विभाजित किया गया है, जम्मू, कठुआ, सांबा, राजौरी, रियासी, उधमपुर, रामबन, डोडा, किश्तवाड़ और पुंछ। यहां की ऊंचाई, वर्षा, तापमान, आर्द्रता और स्थलाकृति को ध्यान में रखते हुए, जम्मू संभाग में तीन अलग-अलग पहाड़ी भूमि स्थितियां हैं। उच्च पहाड़ी समशीतोष्ण भूमि पॉकेट (एमएसएल से 1500-4500 मीटर ऊपर), मध्य पहाड़ी मध्यवर्ती भूमि पॉकेट (एमएसएल से 800-1500 मीटर ऊपर) और जम्मू क्षेत्र की तलहटी पहाड़ियां एवं मैदानी उपोष्णकटिबंधीय भूमि (एमएसएल से 220-800 मीटर ऊपर) जो जलवायु में भारी विविधता के साथ प्रदान की गई है। जम्मू संभाग 26,293 कि.मी. के भौगोलिक क्षेत्र को कवर करता है। यह समुद्र से 220-4500 मीटर की ऊंचाई के बीच स्थित है।

जम्मू संभाग का प्रमुख हिस्सा पहाड़ी है। इसमें पीर पंजाल रेंज शामिल है, जो इसे कश्मीर घाटी, डोडा और किश्तवाड़ के पूर्वी जिलों में हिमालय के हिस्से से अलग करती है। दक्षिण में मैदानी इलाकों की एक संकीर्ण पट्टी है। तापमान जनवरी में 0 डिग्री सेल्सियस से मई और जून में 45 डिग्री सेल्सियस तक रहता है। मानसून की वर्षा जुलाई से सितंबर के अंतिम सप्ताह तक और अधिकतम जुलाई और अगस्त में होती है।

रासायनिक और प्राकृतिक खेती

प्राकृतिक और रासायनिक खेती के बीच आवश्यक अंतर यह है कि रासायनिक खेती में किसान कीटों और खरपतवारों के प्रबंधन और पौधों को पोषण प्रदान करने के लिए रासायनिक हस्तक्षेपों पर निर्भर रहते हैं। इसका मतलब है कि रासायनिक खेती में किसान सिंथेटिक कीटनाशकों, शाकनाशी और उर्वरकों पर निर्भर रहते हैं, जबकि प्राकृतिक खेती क्षेत्र आधारित प्राकृतिक योगों जैसे बीजामृत, घनजीवामृत आदि पर निर्भर करती है। रासायनिक खेती ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन, मृदा के कटाव, जल प्रदूषण को बढ़ाती है और मानव स्वास्थ्य को संकट में पहुंचाती है, जबकि प्राकृतिक खेती मृदा के स्वास्थ्य का संरक्षण और निर्माण करती है। बिना किसी विषैले कीटनाशक अवशेषों के स्वच्छ पानी और हवा के लिए प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र में सुधार करती है।

कृषि जलवायु और मृदा की स्थिति

मृदा कृषि की रीढ़ है और किसी भी क्षेत्र में पाई जाने वाली मृदा का प्रकार उन फसलों के प्रकार को निर्धारित करता है, जो वहां उगाई जा सकती हैं। मृदा को इसकी संरचना, बनावट और पानी की मात्रा के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। मृदा की खनिज संरचना इसके प्रकार को परिभाषित करती है। केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर में मृदा के प्रकार को जलोढ़ के रूप में वर्णित किया गया है, जो मुख्य रूप से कठुआ और जम्मू जिलों में पाया जाता है। यह कम मृदा सामग्री के साथ दोमट है और इसमें कम मात्रा में चूना और मैग्नीशियम पाया जाता है।

जम्मू और कश्मीर की मृदा को मोटे तौर पर निम्न समूहों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

जलोढ़ मृदा

यह मृदा का प्रकार कठुआ, पुंछ, रियासी, उधमपुर के मैदानों और चिनाब, झेलम, रावी एवं सिंध जैसी नदियों के बाढ़ के मैदानों पर पाई जाती है।

भूरी वन मृदा

यह मृदा मुख्य रूप से डोडा, पुंछ, बारामूला और उधमपुर जिलों में पाई जाती है। इस मृदा में गाद दोमट की बनावट होती है। यह मध्यम क्षारीय है। इसमें 40 प्रतिशत की जल धारण क्षमता और कार्बन और नाइट्रोजन की अच्छी मात्रा है। इस प्रकार की मृदा में सेब, चेरी और गेहूं की खेती की जा सकती है।

पर्वतीय वन मृदा

यह मृदा कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पाई जाती है। इसमें रेतीली दोमट से दोमट बनावट होती है। इसमें 30 प्रतिशत से 40 प्रतिशत की सीमा में जल धारण क्षमता है और यह थोड़ी क्षारीय है।

पर्वतीय घास के मैदान की मृदा

गुलमर्ग, सोनमर्ग और पहलगाम में पाई जाने वाली यह मृदा क्षारीय है और इसमें कार्बनिक कार्बन का उच्च स्तर है। इसमें 50 प्रतिशत से 60 प्रतिशत पानी रह सकता है। यह मृदा रेतीली दोमट है।

लाल और पीली पॉडजोलिक मृदा

ये कठुआ, राजौरी, उधमपुर और पुंछ में पाई जाती हैं।

ग्रे-ब्राउन पॉडजोलिक मृदा

यह मृदा बनावट में दोमट और थोड़ी अम्लीय होती है। यह गुलमर्ग और पहलगाम में व्यापक रूप से पाई जाती है।

जैविक और प्राकृतिक खेती

जैविक खेती और प्राकृतिक खेती दोनों पोषक तत्वों और रसायनों के सिंथेटिक उपयोग से दूर हैं। दोनों के बीच मुख्य अंतर यह है कि प्राकृतिक खेती में उपयोग किए जाने वाले आदान खेत पर ही उत्पादित होते हैं। ये पौधों और पशुओं दोनों से प्राकृतिक मूल रूप से प्राप्त होते हैं। गाय की स्वदेशी नस्ल प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण घटक है। जैविक खेती में, यह सेटअप का हिस्सा हो भी सकता है और नहीं भी। यहां खाद/जैविक आदानों को आउटसोर्स किया जा सकता है।

प्राकृतिक खेती पर केवीके द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम

लिथोसोल

इस प्रकार की मृदा जम्मू, उधमपुर और पुंछ में वन पहाड़ियों की ढलानों पर पाई जाती है। यह 38 प्रतिशत तक पानी और 0.2 प्रतिशत से 0.6 प्रतिशत कार्बनिक कार्बन संचित कर सकता है।

लवणीय क्षारीय मृदा

यह जम्मू और कठुआ के जलोढ़ बेल्ट में पाई जाती है।

जम्मू-कश्मीर में रासायनिक खेती

यह देखा गया है कि जम्मू और कश्मीर में उर्वरक की खपत (कि.ग्रा./हैक्टर) पूरे देश की तुलना में आधे से भी कम है। जम्मू-कश्मीर उर्वरक की खपत एनपीके की 61.9 कि.ग्रा./हैक्टर है, जबकि एनपीके की राष्ट्रीय खपत 133.1 कि.ग्रा./हैक्टर (2018-19) है। जब हम समग्र रूप से केंद्र शासित प्रदेश के कीटनाशक खपत के आंकड़ों को देखते हैं, तो यह कई अन्य राज्यों के साथ तुलनीय लग सकता है। तथापि, जब कश्मीर में अधिक कीटनाशक की खपत करने वाले बागों और जम्मू में संकरी सिंचित मैदानी पट्टी को छोड़ देते हैं, तो शेष जम्मू संभाग का हिस्सा और भी कम हो जाता है। जम्मू संभाग में कीटनाशक की खपत केवल 146.59 मीट्रिक टन (एमटी) है। इसमें अधिकांश हिस्सा जम्मू, कठुआ और सांबा जिलों का है, जो कुल क्षेत्र का लगभग 74 प्रतिशत है।

प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने में केवीके की भूमिका

जम्मू-कश्मीर में केवीके किसानों के बीच प्राकृतिक खेती के ज्ञान और कौशल को उन्नत करके प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दे रहे हैं। किसानों के बीच प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए भाकृअनुप द्वारा केवीके के माध्यम से प्राकृतिक खेती को बढ़ाने पर एक परियोजना शुरू की गई है। किसानों को प्राकृतिक खेती के फार्मूले जैसे-जीवामृत, बीजामृत, घनजीवामृत, नीमास्त्र, अग्निअस्त्र, ब्रह्मास्त्र आदि तैयार करने और खेतों में इनका उपयोग, मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने तथा सुरक्षित और स्वस्थ आहार का उत्पादन करने के लिए निर्देशित किया जाता है।

केवीके पारंपरिक क्षेत्रों को चरणबद्ध तरीके से प्राकृतिक खेती के खेतों में बदलने की कोशिश कर रहे हैं। यह प्रयास खेती की लागत को कम करके किसानों की आय बढ़ाने में मदद कर रहा है। चूंकि जम्मू-कश्मीर के ग्रामीण इलाकों में गायों की स्वदेशी नस्लों की बड़ी संख्या है और किसान शायद ही मृदा (विशेषकर पहाड़ी क्षेत्रों में) में रसायनों का उपयोग कर रहे हैं, प्राकृतिक खेती की जम्मू-कश्मीर में अपार संभावनाएं हैं।

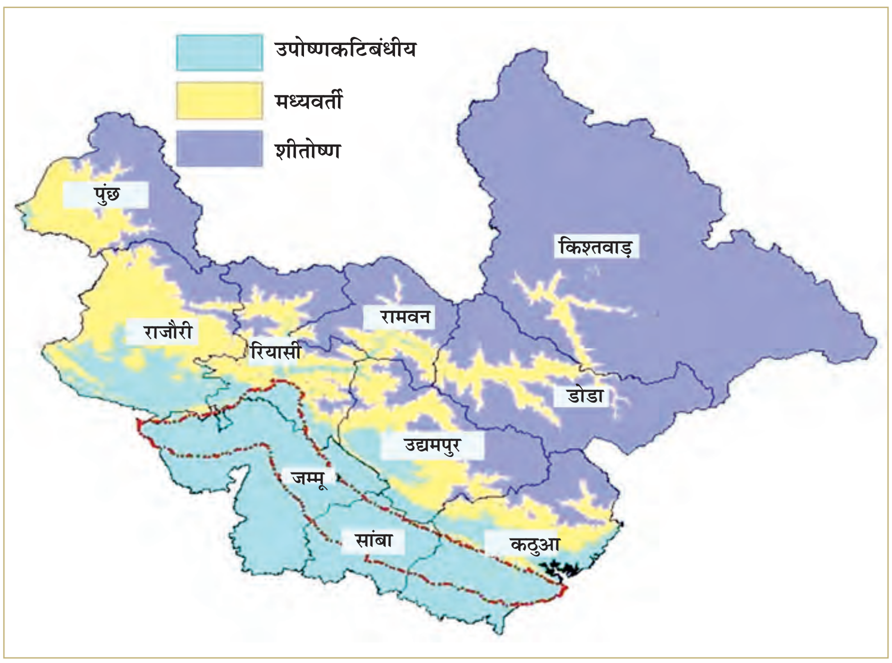

जिलों के साथ जम्मू संभाग के कृषि-जलवायु क्षेत्र की लाल रूपरेखा अत्यधिक शुष्क बेल्ट को दर्शाती है

सिफारिशें

- जम्मू-कश्मीर का अधिकांश क्षेत्र वर्षा आधारित है और शुष्क भूमि प्रकार की स्थितियां हैं। कृषि-रसायनों की पहले से ही कम खपत के कारण इस वर्षा सिंचित पहाड़ी क्षेत्र को व्यापक अर्थों में प्राकृतिक खेती के तहत कवर करने का लक्ष्य होना चाहिए।
- जैविक खेती के समान, प्राकृतिक खेती को भी समूह आधारित दृष्टिकोण में बढ़ावा देने की आवश्यकता है। किसानों द्वारा समूहों में प्राकृतिक खेती करने से उन्हें प्रमाणन प्रक्रिया, संसाधनों का आबंटन, कृषि उत्पादन और आदानों की उपलब्धता में आसानी होगी। यह

प्राकृतिक कृषि उपज के विपणन में भी सुविधा प्रदान करेगा।

- देसी नस्ल की पहाड़ी क्षेत्र की गाय प्राकृतिक खेती का एक महत्वपूर्ण घटक है। वास्तव में, जब प्राकृतिक खेती के लिए आदानों की बात आती है, तो यह केंद्र बिंदु होता है। गाय की एकल स्वदेशी नस्ल लगभग 30 एकड़ के क्षेत्र में प्राकृतिक खेती करने के लिए पर्याप्त है।
- जम्मू-कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्रों में उर्वरक खपत (कि.ग्रा./हैक्टर) और कीटनाशकों का प्रयोग देश के अन्य भागों की तुलना में बहुत कम है। इस प्रकार जम्मू-कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्र प्राकृतिक खेती के लिए एक आदर्श क्षेत्र है। सिंथेटिक रसायनों पर निर्भरता पहले से ही बहुत कम है।
- जम्मू-कश्मीर के पहाड़ी क्षेत्रों में अधिकांश किसान पहले से ही अपने खेतों के चारों ओर उगने वाले वृक्षों के साथ पारंपरिक विधि में कृषि वानिकी का अभ्यास कर रहे हैं। कृषि वानिकी आधारित प्रणालियां प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दे सकती हैं।

भावी दिशा

जम्मू-कश्मीर में प्राकृतिक खेती को अपनाने के लिए उपयुक्त नीतिगत ढांचे और प्रथाओं के पैकेज की आवश्यकता है। केंद्र शासित प्रदेश जम्मू और कश्मीर के किसान प्राकृतिक कृषि उत्पादों की बढ़ती मांग के अवसर का लाभ उठा सकते हैं। किसानों को प्राकृतिक खेती के लिए लॉजिस्टिक सपोर्ट देने की जरूरत है, ताकि उन्हें इसका अधिक से अधिक लाभ मिल सके। वर्तमान में जैविक उत्पादों की मांग आपूर्ति से अधिक है। जैविक फसलों का बाजार प्रत्येक वर्ष बहुत अधिक दर से बढ़ रहा है। खाद्य सुरक्षा और पर्यावरण स्थिरता के लिए उभरती चुनौती को प्राकृतिक खेती से कम किया जा सकता है। प्राकृतिक कृषि उत्पादों की अच्छी बाजार मांग का केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर के किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

प्राकृतिक खेती पर कुछ विशिष्ट परियोजनाओं को विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में लागू किया जाना चाहिए, ताकि जम्मू-कश्मीर में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा दिया जा सके। संभावित क्षेत्रों की पहचान करने के लिए समूह आधारित दृष्टिकोण का पालन करने की आवश्यकता है।

चयनित क्षेत्रों में प्राकृतिक खेती पर जोर दिया जाना चाहिए। प्राकृतिक कृषि उत्पादन के विशिष्ट क्षेत्रों की पहचान करने की आवश्यकता है। सबसे पहले क्षेत्रों का बेसलाइन सर्वेक्षण करने की जरूरत है और उसके बाद किसानों को व्यावसायिक प्राकृतिक खेती की ओर उन्मुख करने के लिए किसान बैठकें आयोजित करने की आवश्यकता है। किसानों को जैविक आदानों की तैयारी जैसे जीवामृत, बीजामृत, पंचगव्य, किण्वित छाछ आदि पर विशिष्ट प्रदर्शन दिए जाने चाहिए।

जम्मू-कश्मीर में प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने से न केवल कृषि उत्पादन की लागत कम होती है, बल्कि क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों का प्रभावी उपयोग भी सुनिश्चित होता है। प्राकृतिक खेती एक ऐसा मॉडल है जो न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति सुधार सकता है बल्कि जम्मू-कश्मीर के कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के स्थायित्व में भी सहायक हो सकता है।

प्राकृतिक खेती द्वारा फसल उत्पादन

जम्मू-कश्मीर में प्राकृतिक खेती

जम्मू-कश्मीर के अधिकांश किसानों के पास छोटे और सीमांत आकार की भूमि जोत है जो विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों में कम आय उत्पन्न करती है। प्राकृतिक खेती प्रणाली नई नहीं है और प्राचीनकाल से जम्मू-कश्मीर में इसका पालन किया जा रहा है। जम्मू-कश्मीर में मृदा में प्राकृतिक खेती के आदानों को जोड़ने की परंपरा है। ये आदान पोषक तत्वों के पूरक हैं और मृदा के भौतिक एवं जैविक गुणों में सुधार करते हैं। वर्षों से, जम्मू और कश्मीर के किसानों ने नई कृषि तकनीकों को अपनाया है। फिर भी यहां लगभग सभी फसलों की कम फसल उत्पादकता है। जम्मू-कश्मीर में प्राकृतिक खेती के विकास के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण और योजना विकसित करने की आवश्यकता है। जम्मू-कश्मीर में प्राकृतिक खेती की अपार संभावनाएं हैं। जम्मू-कश्मीर अर्थव्यवस्था के विकास में प्राकृतिक खेती के महत्व को उजागर करने के लिए सरकार द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। यहां प्राकृतिक खेती को बढ़ावा देने के लिए कठोर प्रयास करने की जरूरत है। अब यहां प्राकृतिक खेती गति पकड़ रही है। इसके और अधिक प्रसार हेतु किसानों के जागरूकता और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यहां का बड़ा क्षेत्र पहले से ही अर्ध-जैविक खेती के अधीन है, खासकर जम्मू-कश्मीर के पहाड़ी जिलों में रासायनिक उर्वरकों की उपलब्धता की कमी के कारण इन क्षेत्रों के किसान शायद ही रासायनिक उर्वरकों का उपयोग करते हैं। जम्मू-कश्मीर से केसर, बासमती चावल, राजमाश, मसाले और विभिन्न अन्य जैविक कृषि उत्पादों के लिए देश-विदेश में बाजार तलाशने की जरूरत है। प्राकृतिक खेती आमतौर पर पर्यावरण के अनुकूल होती है, मृदा के स्वास्थ्य को बनाए रखती है और जैव विविधता को बढ़ाती है।

झींगा में प्रमुख रोगों का नियंत्रण

भावेश चौधरी[1], **नयन चौहान**[1] और **आर्या सिंह**[2]

"विश्व में सबसे मूल्यवान जलीय कृषि प्रजातियों में से एक और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सबसे अधिक कारोबार वाला समुद्री खाद्य जीव उत्पाद झींगा है। उच्च बाजार मूल्य और मजबूत मांग के कारण, झींगा पालन ने अधिक ध्यान आकर्षित किया है। इससे कई विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को फलने-फूलने में मदद मिली है। एशिया में पालन की जाने वाली पेनेइड झींगापालन को आर्थिक रूप से प्रभावित करने वाले गंभीर रोगों का प्राथमिक कारण संक्रामक रोगजनक है। विश्व पशु स्वास्थ्य संगठन (ओ.आई.ई., ऑफिस इंटरनेशनल डेसएपिजूटीज) के पास इनमें से कई रोगों की एक सूची है। इन रोगों को रोकने के लिए जैविक या रासायनिक एजेंटों जैसे टीके, इम्यूनोस्टिमुलेंट का उपयोग करना महत्वपूर्ण है।"

दुनिया में झींगापालन एक तेजी से बढ़ता उद्यम है। उच्च बाजार मूल्य एवं अत्यधिक मांग के कारण झींगापालक भरपूर लाभ कमाने हेतु अथक प्रयास कर रहे हैं। किंतु विश्वभर में झींगापालक, झींगा में होने वाले विभिन्न रोगों से समस्या का सामना कर रहे हैं। ये रोग झींगा में उच्च मृत्युदर का कारण बनते हैं। इसके साथ ही ये रोग पालकों को भारी आर्थिक नुकसान भी पहुंचाते हैं। इस समस्या से पार पाने के लिए रोगों का निदान करना बेहद जरूरी है।

येलो हेड डिजीज

येलो हेड डिजीज (वाई.एच.डी.) पहला बड़ा वायरल रोग था, जिसने वर्ष 1990-91 के दौरान थाईलैंड में ब्लैक टाइगर झींगा पालन को व्यापक नुकसान पहुंचाया। वाई.एच.डी. को चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, श्रीलंका, थाईलैंड और वियतनाम में दर्ज किया गया है।

वाई.एच.डी. का प्रेरक एजेंट

वाई.एच.डी. 40-60 एन.एम. से लेकर 150-200 एन.एम. आकार के रॉडनुमा विषाणु के कारण होता है। इसमें एकल फंसे आरएनए, येलो हेड वायरस जीनोटाइप 1 (वाई.एच.वी. जीनोटाइप 1) होते हैं। कम विषैला वायरल संबंधित जीनोटाइप गिल से जुड़े वायरस (जी.ए.वी.) के रूप में जाना जाने वाला वायरस, ऑस्ट्रेलिया, एशिया, पूर्वी अफ्रीका और मैक्सिको में पालन और जंगली आबादी में अत्यधिक देखा गया है।

लक्षण

- वाई.एच.डी. मुख्य रूप से 5-15 ग्राम के तालाब में पाले गए किशोर अवस्था के झींगों को प्रभावित करता है।
- प्रभावित झींगा आमतौर पर दो से तीन दिनों तक भरपेट आहार करता है और फिर अचानक खाना बंद कर देता है। तालाब की परिधि के पास तैरते हुए देखा जाता है।
- वाई.एच.डी. नैदानिक संकेतों की पहली उपस्थिति के 3-5 दिनों के भीतर संक्रमित पी. मोनोडॉन तालाबों में 100 प्रतिशत तक मृत्यु दर का कारण बन सकता है।
- वाईएच.डी. संक्रमण संक्रमित झींगा में सूजन और हल्के पीले रंग के हेपेटोपैनक्रियाज का कारण बन सकता है। कुछ घंटों के भीतर मरने से पहले शरीर का सामान्य पीला रूप हो सकता है।
- वाई.एच.डी. एक्टोडर्मल और मेसोडर्मल मूल के ऊतकों जैसे लिम्फोइड अंग, हेमोसाइट्स, हेमटोपोइटिक ऊतक, गिल लैमेला और सबक्यूटिस, आंत, एंटीनल ग्रंथि, गोनैड्स, तंत्रिका तंत्र एवं गैन्लिया के स्पंजी संयोजी ऊतक को प्रभावित करता है।

निदान

वाई.एच.डी. का निदान आर.टी.-पी.सी.आर. का उपयोग करके या डॉट-ब्लॉट और आई.एस.एच. परीक्षणों जांच के साथ किया जा सकता है। पेट या गिल के एच एवं ई दाग वाले वर्गों में तीव्र बेसोफिलिक

[1]मात्स्यिकी महाविद्यालय, केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय (इम्फाल), लेम्बुचेर्रा, अगरतला-799210 (त्रिपुरा); [2]भाकृअनुप-केंद्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुम्बई-400061

टी.एस.वी. का नियंत्रण

- टी.एस.वी. से मुक्त होने के लिए परीक्षण किए गए बीज के साथ हैचरी और स्टॉकिंग तालाबों में एस.पी.एफ. ब्रूडस्टॉक के उपयोग से रोग को रोका जा सकता है।
- आसपास की सुविधाओं, जंगली झींगा और वाहक से वायरस के पुनः प्रवेश को रोकने के लिए सावधानी बरती जानी चाहिए।
- वायरस को नियंत्रित करने के लिए अन्य तरीकों में बी.एम.पी. और इष्टतम पर्यावरणीय परिस्थितियों का रखरखाव, 50 कि.ग्रा./हैक्टर पर हाइड्रेटेड चूने (सीएओएच) के साप्ताहिक अनुप्रयोग, मछली के साथ पॉलीकल्चर (मरने और मृत वाहक का उपभोग करने के लिए) शामिल हैं।
- संक्रमित स्टॉक को पूरी तरह से नष्ट कर दिया जाना चाहिए और संवर्धित इकाई को कीटाणुरहित किया जाना चाहिए।

समावेशन के सूक्ष्म प्रदर्शन द्वारा मृत झींगा में हिस्टोलॉजिकल रूप से भी निदान किया जा सकता है।

वाई.एच.डी. का प्रचार

- वाई.एच.डी. के प्रसार का प्राथमिक तंत्र क्षैतिज मार्ग के माध्यम से है। यह रोग जलजनित या वाहक जीव, सहवास और यांत्रिक साधनों के माध्यम से फैलता है।
- वाई.एच.डी. को तीन दिनों तक ऑक्सीजनयुक्त समुद्री जल में सक्रिय देखा गया है। अन्य झींगा जैसे *पी. मर्गुइनेसिस, पी. इंडिकस, मेटापेनेयसएन्सिस, पैलेमोन स्टाइलिफेरस* और *एसेट्स स्पीशीज* संक्रमित हो सकते हैं और वाहक के रूप में कार्य कर सकते हैं। अन्य क्रस्टेशियन, जैसे *मैक्रोब्राचियूम रोसेनबर्गी* एवं केकड़े की विभिन्न प्रजातियां और *आर्टेमिया* वाई.एच.डी. के लिए अपवर्तक प्रतीत होते हैं।
- संक्रमित ब्रूडस्टॉक, परिपक्वता/हैचरी सुविधाओं में लार्वा में वायरस का संचार कर सकता है। इसके लिए पूरी तरह से कीटाणु शोधन प्रोटोकॉल का सख्ती से पालन करना आवश्यक है।

वाई.एच.डी. का नियंत्रण

तालाबों में वाई.एच.डी. उन्मूलन अन्य वायरस के समान है। इसमें बी.एम.पी. का अभ्यास करना शामिल है, जिसमें कीटाणुशोधन और वाहक के उन्मूलन द्वारा तालाब तैयार करना, जलाशय के पानी का क्लोरीनीकरण, पानी को फिल्टर करना, स्थिर पर्यावरणीय परिस्थितियों का रखरखाव, निर्वहन से पहले संक्रमित तालाबों का कीटाणुशोधन और नियमित निगरानी रखना शामिल है।

टौरा सिंड्रोम वायरस

टौरा सिंड्रोम वायरस (टी.एस.वी.) की पहचान पहली बार वर्ष 1992 में इक्वाडोर में टौरा नदी के आसपास झींगा तालाबों में की गई थी। यह रोग तीन वर्ष के भीतर पूरे लैटिन और उत्तरी अमेरिका में तेजी से फैल गया। इसके बाद, मुख्य भूमि चीन और ताइवान (वर्ष 1999 में) सहित एशिया से और वर्ष 2003 के अंत में थाईलैंड में भी टी.एस.वी. की सूचना मिली थी। यह रोग पी. वन्नामेई के सजीव पी.एल. एवं ब्रूडस्टॉक के क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय हस्तांतरण के माध्यम से फैलता है।

प्रेरक

प्रारंभिक कार्य ने सुझाव दिया कि टौरा सिंड्रोम वायरस एक विषैले कीटनाशक के कारण हुआ था। हालांकि, अब यह ज्ञात है कि टौरा सिंड्रोम वायरस (टी.एस.वी.) के एक एकल या कई बहुत निकट से संबंधित उत्परिवर्ती उपभेद इसके प्रसार के लिए जिम्मेदार हैं। टी.एस.वी. 32 एन.एम. आकार का एक रेशीय आरएनए वायरस है, जो गैर-आवरण वाले आईकोसाहेड्रोन और उत्परिवर्तन के लिए अधिक प्रवण है, जो झीं में भारी तनाव उत्पन्न करता है।

टी.एस.वी. के लक्षण

- टी.एस.वी. संक्रमण किशोर झींगा (0.1-1.5 ग्राम शरीर के वजन) में तालाबों को स्टॉक करने के दो से चार सप्ताह के भीतर होता है। यह बड़े पैमाने पर एकल मॉल्टचक्र की अवधि के भीतर होता है।
- रोग के तीव्र चरण में, प्रीमॉल्ट चरण के दौरान, झींगा कमजोर, नरम-खोल वाला, खाली आंत वाला होता है। विस्तारित क्रोमाटोफोर फैलती हुई दिखाई देती है, जो लाल रंग की होती है, विशेष रूप से पूंछ में (इसलिए सामान्य नाम-रेड टेल रोग) होती है। इस तरह के झींगा आमतौर पर मोल्टिंग (5-95 प्रतिशत) के दौरान मर जाते हैं।

झींगा पालन तालाब में स्वच्छता अहम

- वयस्क झींगा को किशोरों की तुलना में अधिक प्रतिरोधी होने के लिए जाना जाता है। झींगा, जो रोग के संक्रामक चरण में जीवित रहता है। स्वस्थ होने के संकेत दिखाता है और रोग के पुराने चरण में प्रवेश करता है। इस तरह के झींगा की उपत्वचा पर कई यादृच्छिक रूप से वितरित, अनियमित, पित्त, मेलेनाइज्ड घाव दिखते हैं। ये स्थूल घाव बने रहते हैं। निर्मोचन के दौरान ये जा सकते हैं और इसके बाद झींगा सामान्य दिखाई देता है।

निदान

- टी.एस.वी. का निदान पहचान के मानक हिस्टोलॉजिकल और आण्विक तरीकों का उपयोग करके किया जा सकता है।
- रिवर्स ट्रांस्क्रिप्टेज पीसीआर (आर.टी.-पी.सी.आर.) परख आमतौर पर उपयोग की जाती है। पैराफिन वर्गों के साथ आई.एस.एच. पर लागू विशिष्ट डीएनए जांच और सामान्य शरीर की सतह के कटिकुलर एपिथेलियम में कई एलओस्फेरॉइड और नेक्रोसिस के मल्टीफोकल क्षेत्रों के साथ बढ़े हुए लिम्फोइड अंगों (एल.ओ.) के हिस्टोलॉजिकल प्रदर्शन, उपांग, गलफड़े, हिंडगट और फोरगट (पेट के अन्न प्रणाली, पूर्ववर्ती और पीछे के कक्ष) पुष्टिकारक निदान प्रदान करते हैं।

टी.एस.वी. का प्रसार

टी.एस.वी. क्षैतिज रूप से संक्रमित झींगों, सहवास और जलजनित मार्गों के माध्यम से प्रेषित होता है। हाल ही में यह देखा गया है कि कीट और एवियनवैक्टर के माध्यम से यांत्रिक हस्तांतरण संक्रमण का संभावित मार्ग है। झींगा खाने वाले सीगल अपने मल के माध्यम से टी.एस.वी. को प्रसारित कर सकते हैं। पक्षियों में टी.एस.वी. संचारित करने की क्षमता है।

लवणीय-क्षारीय मृदा में लीचिंग एवं जिप्सम का महत्व

मोहन लाल दौतानिया[1], राजेश कुमार दौतानिया[2], वासुदेव मीणा[1], चेतन कुमार दौतानिया[3] और **ललित कृष्ण मीणा[1]**

भारत में लगभग 6.7 मिलियन हैक्टर क्षेत्र लवणीय एवं क्षारीय मृदा के रूप में चिन्हित है। यह मृदा सभी राज्यों में पायी जाती है। इसमें मुख्यत: राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा समुद्री किनारे वाले सभी राज्यों का क्षेत्रफल शामिल है। अगर उत्पादन की बात करें, तो इन क्षेत्रों में नमक की मात्रा अधिक होने के कारण कुछ फसलों का ही उत्पादन करना पड़ता है तथा संसाधनों की दक्षता भी कम मापी गयी है। आगामी वर्षों में, भारत की 1.66 बिलियन जनसंख्या को खाद्य उत्पाद प्रदान करने के लिए लवणीय एवं क्षारीय मृदा का प्रबंधन करके लगभग 400 मिलियन टन खाद्य उत्पादन वर्ष 2050 तक करना होगा। विकासशील देशों में वैज्ञानिक आधारित तकनीकी दर धीमी गति से होने के कारण औद्योगिक विकास की दर विकसित देशों की तुलना में कम है। इसी कारण विकसित देशों में तकनीकों के विकसित होने के कई वर्षों बाद विकासशील देशों तक पहुंच पाती है। इसके बावजूद भी इनका रखरखाव तथा क्षेत्र अनुसार तकनीकी परिवर्तन में भी कई वर्ष लग जाते हैं। मृदा का प्रबंधन वैज्ञानिक कृषि में प्रथम पायदान पर देखते हैं तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने देश में कई शोध संस्थान स्थापित किये हैं जैसे-काजरी, जोधपुर, केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल, भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली इत्यादि। इनके अलावा राज्य के विभिन्न कृषि विभाग भी अनवरत लवणीय एवं क्षारीय मृदा के सुधार के लिए लगातार कार्य कर रहे हैं।

[1]भाकृअनुप-सरसों अनुसंधान निदेशालय, भरतपुर-321303; [2]श्री कर्ण नरेन्द कृषि महाविद्यालय, जोबनेर-303328; [3]कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर-334006

भौतिक एवं रासायनिक गुणों के आधार पर इन्हें निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। लवणीय एवं क्षारीय मृदा की रासायनिक विशेषताओं का विश्लेषण करेंगे, तो पायेंगे कि ये मृदा नमक की मात्रा अधिक रखती हैं। क्षारीय मृदा में सोडियम की मात्रा कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट के साथ मिलकर विपथन को बढ़ाते हैं। इससे मृदा की संरचना कमजोर होती है, जो मृदा में जल, वायु एवं पोषक तत्वों की मात्रा एवं आदान-प्रदान को प्रभावित करती है तथा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पौधों की वृद्धि एवं पैदावार में कमी देखी गई है।

लवणीय मृदा

इन मृदा का पी-एच मान 8.5 से कम तथा विद्युत चालकता 4 डेसी-साइमन/मीटर से अधिक पाई जाती है। इन मृदा की संरचना अच्छी पाई जाती है तथा इसके प्रबंधन के लिए सस्य क्रियाएं तथा फसल अवशेषों, भौतिक विधियों का प्रयोग मुख्यत: करते हैं।

क्षारीय मृदा

अधिक नमक की सान्द्रता के कारण क्षारीय मृदा का पी-एच मान 8.5 से अधिक, विद्युत चालकता 4 डेसी-साइमन/मीटर से कम, सोडियम अवशोषण अनुपात 13 से अधिक, सोडियम विनिमय दर 15 से अधिक पाई जाती है। मृदा संरचना की गुणवत्ता निम्न होने के कारण हवा की दर अधिक होने के साथ मृदा के कण वायुमण्डल में अधिक पाये जाते हैं।

लवणीय-क्षारीय मृदा

इस प्रकार की मृदा में लवणीय एवं क्षारीय दोनों प्रकार की मृदा के लक्षण पाये जाते हैं। इनका पी.एच 8.5 से अधिक तथा विद्युत चालकता भी डेसी-साइमन/मीटर से अधिक, सोडियम अवशोषण अनुपात 13 से

कार्बनिक पदार्थों के समावेशन से मृदा के स्वास्थ्य में सुधार

अधिक तथा सोडियम विनिमय दर भी 15 से अधिक पाया जाता है। इस प्रकार की मृदा में लवणीयता की संगठन में बदलाव होते रहते हैं।

लवणीय/क्षारीय मृदा का पादप कार्यिकी पर प्रभाव

- नमक की सान्द्रता अधिक होने के कारण मृदा में नमी की मात्रा में कमी होने पर पौधों द्वारा जल का अवशोषण नहीं होता है।
- जड़ तन्त्र द्वारा पोषक तत्वों का ग्रहण कम होता है।
- पौधों में सिंचाई जल की आवश्यकता अधिक होती है।
- पौधों की जड़ें कमजोर या मृत हो जाती हैं।
- फसल की गुणवत्ता में कमी होती है।

लवणीय एवं क्षारीय मृदा के प्रबंधन में प्रयुक्त होने वाली विधियों में सस्य प्रबंधन, फसल अवशेषों का प्रयोग एवं प्रबंधन, भौतिक विधियों का प्रयोग, रासायनिक क्रियाओं में जिप्सम का प्रयोग, लीचिंग इत्यादि। इन सभी में लीचिंग (लवणीय मृदा में) एवं जिप्सम (क्षारीय मृदा में) का प्रयोग प्रभावी है।

सारणीः क्षारीय सापेक्ष सहिष्णुता के आधार पर फसलों का वर्गीकरण

विनिमय सोडियम प्रतिशत	फसल
2-10	नटस्, नीबूवर्गीय फल, एवोकाडो
10-15	कुसुम, उड़द, मटर, अरहर
16-20	चना, सोयाबीन
20-25	मूंगफली, प्याज, बाजरा
25-30	अलसी, लहसुन, ग्वार
30-50	जई, सरसों, कपास, गेहूं, टमाटर
50-60	बीट, जौ, ढैंचा
60-70	चावल

लीचिंग

यह प्रक्रिया मृदा में लवण की अतिरिक्त मात्रा को जड़ तन्त्र से निक्षालन करने के लिए स्वस्थ जल को खेत में भरकर रखते हैं। वर्षा का पानी भी लीचिंग के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस प्रक्रिया में जल के साथ नमक आयन्स घुलनशील अवस्था में मृदा की निचली सतह में एकत्रित हो जाते हैं, जो वाष्पोत्सर्जन के दौरान भी कोशिका परिवहन द्वारा भी भूमि की ऊपरी सतह में नहीं पहुंच पाते हैं। लीचिंग के दौरान नमक की मात्रा कितनी रखनी है, इसे विद्युत चालकता से मापते हैं। अतः आवश्यक विद्युत चालकता के लिए स्वच्छ जल की मात्रा की गणना की जाती है।

वर्षा जल की मात्रा = (सिंचाई जल की मात्रा × सिचाई जल में नमक की सान्द्रता)/(वर्षा जल में नमक की सान्द्रता)

लीचिंग की दक्षता निम्न कारकों पर निर्भर करती हैः

- **मृदा संरचनाः** अगर मृदा की संरचना अच्छी होगी, तो नमक के निक्षालन की दर अधिक होगी तथा कम स्वच्छ जल की मात्रा में अधिक नमक जड़ तन्त्र के नीचे जायेगा। इसके साथ ही मृदा में रेत का प्रतिशत अधिक होगा, तो भी लीचिंग की दक्षता बढ़ेगी।
- **स्वच्छ जल की नमक सान्द्रताः** लीचिंग के लिए प्रयुक्त होने वाले सिंचाई जल में नमक की सान्द्रता कम होगी, तो लीचिंग की दक्षता बढ़ेगी।
- **मृदा कार्बन की मात्राः** मृदा कार्बन की मात्रा बढ़ाने से लीचिंग की दक्षता में बढ़ोतरी होती है। कार्बन मृदा में जल रन्ध्रता की संख्या को बढ़ाता है, जिससे कि मृदा संरचना में सुधार के साथ-साथ नमक का निक्षालन भी अधिक होता है।
- **वायुमण्डलीय कारकः** वायुमण्डलीय कारक भी लीचिंग की दक्षता को प्रभावित करते हैं। यदि कम तापमान होगा, तो लीचिंग की दक्षता बढ़ेगी जबकि अधिक तापमान में मृदा में उपस्थित नमक की सान्द्रता मृदा की ऊपरी परत में एकत्रित होगी, जिससे फसल की वृद्धि प्रभावित होगी।

अगर मृदा में लवणीयता के साथ-साथ उपलब्ध सोडियम की सान्द्रता भी अधिक है, तो अच्छी फसल उत्पादन के लिए लीचिंग के साथ-साथ जिप्सम का प्रयोग भी करना होगा।

क्षारीय मृदा की संरचना

जिप्सम का प्रयोग

जिप्सम की मात्रा मुख्यतः मृदा में सोडियम के स्तर पर निर्भर करती है। इसके अलावा मृदा में विभिन्न कणों का प्रतिशत, कार्बन की मात्रा इत्यादि भी प्रभावित करती है। जिप्सम एक सस्ता एवं आसानी से मिलने वाला भूमि सुधारक है। अन्य क्षारीयता को कम करने वाले रसायन भी बाजार में उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग जिप्सम के सापेक्ष किया जाता है।

सारणीः विभिन्न भूमि सुधारकों की मात्रा जिप्सम के सापेक्ष

भूमि सुधारक	जिप्सम सापेक्ष (मात्रा/टन)
जिप्सम	1.00
सल्फर	0.18
चूना-सल्फर	0.75
गंधक अम्ल	0.57
आयरन सल्फेट	1.62
एल्यूमिनियम सल्फेट	1.27
चूना	0.58

लवणीय एवं क्षारीय मृदा में नमक की अधिक सान्द्रता होने के कारण फसल की पैदावार कम होती है। गुणवत्ता में भी कमी पाई गई है। अतः वैज्ञानिक आधार पर इन मृदा के प्रबंधन के लिए लीचिंग एवं जिप्सम का उपयोग फायदेमंद है। इससे यह अतिरिक्त नमक के कणों को जड़-तन्त्र से निचली मृदा परतों में एकत्रित हो जाती है, जो अनुपयोगी होती है। ■

पशुधन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

राजेश कुमार अग्रहरि, सीताराम मिश्र और **अनुष्का पाण्डेय**

"जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक घटना है, इसके प्रभाव विकासशील देशों में ग्रामीण गरीब समुदायों द्वारा अधिक गंभीर रूप से महसूस किए जाते हैं, जो अपनी आजीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत अधिक निर्भर हैं। ग्रामीण गरीब समुदाय आजीविका के लिए कृषि और पशुधन पर बहुत अधिक निर्भर हैं। इसके अलावा, पशुपालन भारत में सबसे अधिक जलवायु-संवेदनशील आर्थिक क्षेत्रों में से एक है। पशुपालन दुनियाभर में एक बड़ी आबादी को रोजगार, स्थायी आय और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग दुनियाभर में संपूर्ण पशुधन आबादी के लिए बड़ा संकट उत्पन्न करते हैं। इसके प्रभाव से बचाने हेतु अथक प्रयास करने की आवश्यकता है।"

संपूर्ण उत्पादन प्रणालियों में प्रतिकूल जलवायु और मौसमी उतार-चढ़ाव, चारे की गुणवत्ता मात्रा तथा पशुधन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। इसके परिणामस्वरूप चरने वाले पशुओं की प्रजनन और उत्पादन क्षमता प्रभावित हो सकती है। गर्मी के महीनों के दौरान अत्यधिक गर्मी चरने वाले पशुओं पर नकारात्मक प्रभाव डालती है और पोषण संबंधी असंतुलन जैसी परिस्थितियां उत्पन्न करती है।

शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में, पशुधन को अक्सर गरीब और सीमांत किसानों के लिए आहार और आर्थिक सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। अपर्याप्त और निम्न गुणवत्ता वाला चारा शुष्क और अर्ध-शुष्क उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में पशुओं के कम उत्पादन का एक प्रमुख कारक है। हालांकि पशु पोषण के विज्ञान की समझ का विस्तार और विकास जारी है।

दुनिया के अधिकांश पशुधन, विशेष रूप से, कई विकासशील देशों में जुगाली करने वाले पशु स्थायी या मौसमी पोषण संबंधी तनाव से ग्रसित हैं। यह लेख डेरी उत्पादन का आकलन करने के लिए उभर रही नई अवधारणाओं पर जानकारी एकत्र करने और बदलते जलवायु परिदृश्य के तहत पशुधन उत्पादन में सुधार के लिए उपलब्ध विभिन्न प्रौद्योगिकियों पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है।

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)

पर्यावरणीय प्रभाव

ग्रीनहाउस गैस का उत्सर्जन

वैश्विक जीएचजी उत्सर्जन में पशुधन उत्पादन का हिस्सा लगभग 14.5 प्रतिशत है, मुख्य रूप से इस प्रकार हैं:

- **आंत्रिक किण्वनः** जुगाली करने वाले पशु, जैसे-गाय और भेड़, पाचन के उप-उत्पाद के रूप में मीथेन का उत्पादन करते हैं।
- **खाद प्रबंधनः** पशु अपशिष्ट के भंडारण और उपचार से मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड, ग्रीनहाउस गैसें निकलती हैं।
- **चारा उत्पादन और परिवहनः** उर्वरक का उपयोग, भूमि साफ करना और

परिवहन कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में योगदान करते हैं।

भूमि उपयोग और वनों की कटाई

पशुधन व खेती के लिए वनों की कटाई एक महत्वपूर्ण चालक है। वनों के बड़े भूभाग को साफ़ किया जाता है:

- सोयाबीन जैसी चारा फसलें उगाने के लिए
- मवेशियों के लिए चारागाह बनाने के लिए

वनों की कटाई से वनस्पति और मृदा से कार्बन की हानि बढ़ जाती है, जिससे पृथ्वी की कार्बन सोखने की क्षमता कम हो जाती है।

जल का उपयोग और प्रदूषण

- पशुधन खेती में चारा उत्पादन और पशुओं की देखभाल के लिए बड़ी मात्रा में पानी की खपत होती है।
- खेतों से निकलने वाला अपवाह जल निकायों को पोषक तत्वों से प्रदूषित करता है, जिससे यूट्रोफिकेशन और जलीय मृत क्षेत्र बनते हैं।

पशुधन और जैव विविधता की हानि

- पशुधन खेती का विस्तार प्राकृतिक आवासों का अतिक्रमण करता है, जिससे जैव विविधता को संकट होता है।
- अत्यधिक चराई और मोनोकल्चर चारा फसलें विविध पारिस्थितिक तंत्र की उपलब्धता को कम करती हैं। देसी प्रजातियों को विस्थापित करती हैं और पारिस्थितिक संतुलन को बाधित करती हैं।

पशुधन उत्पादन में जलवायु समस्याओं का निवारण अहम

बदलती जलवायु में डेरी उत्पादन में सुधार की तकनीकें

जलवायु अनुकूल नस्लें

- प्रजनन कार्यक्रम, जीनोमिक सिलेक्शन और क्रॉसब्रीडिंग के माध्यम से गर्मी-सहिष्णु डेरी नस्लों को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उदाहरण के लिए: बोस टॉरस नस्लों की तुलना में गिर और साहीवाल जैसी बोस इंडिकस नस्लें अधिक गर्मी-सहिष्णु हैं।
- गर्मी और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए जेनेटिक इंजीनियरिंग उपकरण, जैसे सीआरआईएसपीआर की खोज की जा रही है।

सटीक पशुधन पालन

सटीक पशुधन पालन डेरी परिचालन की निगरानी और अनुकूलन के लिए डेटा-संचालित टूल का उपयोग करता है:

- **वेरिएबल सेंसर:** इसके द्वारा वास्तविक समय में महत्वपूर्ण संकेतों, गतिविधि और दूध की उपज को मापा जाता है।
- **ऑटोमेटेड मिल्किंग सिस्टम:** यह श्रम लागत को कम करता है और विभिन्न परिस्थितियों में लगातार दूध उत्पादन को सुनिश्चित करता है।
- **स्मार्ट कूलिंग सिस्टम:** गर्मी के तनाव का पता लगाता है और पंखे जैसे शीतलन तंत्र को स्वचालित रूप से सक्रिय करता है।

चारा प्रबंधन

- **पोषण संबंधी अनुपूरक:** रुमेन संशोधक और एंटीऑक्सीडेंट जैसे चारा एडिटिव्स पशुओं को गर्मी के तनाव से निपटने में मदद करते हैं।
- **सूखा-सहिष्णु चारा फसलें:** ज्वार और बाजरा जैसी फसलें उगाने से चरम मौसम की स्थिति के दौरान चारे की उपलब्धता सुनिश्चित होती है।
- **साइलेज और घास भंडारण:** अधिशेष अवधि के दौरान चारे को संरक्षित करने से कमी के दौरान आपूर्ति बनाए रखने में मदद मिलती है।

नवीकरणीय ऊर्जा एकीकरण

- **बायोगैस डाइजेस्टर:** ऊर्जा के लिए पशुओं से प्राप्त खाद को बायोगैस में परिवर्तित किया जाता है और उर्वरक

डेरी उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव

जलवायु परिवर्तन डेरी उत्पादन को कई तरह से प्रभावित करता है:

- **पशुधन पर गर्मी का तनाव:** डेरी पशु तापमान परिवर्तन के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। गर्मी का तनाव चारे के सेवन, दूध की पैदावार और प्रजनन दर को कम करता है, जबकि रोग की संवेदनशीलता को बढ़ाता है। गर्मी से परेशान गायें खराब चयापचय और कम भूख के कारण कम दूध देती हैं।
- **पानी की कमी:** पशुओं के जलयोजन, चारे की खेती और दूध प्रसंस्करण के लिए पानी आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन से पानी की कमी बढ़ गई है, जिससे डेरी संचालन प्रभावित हो रहा है।
- **चारे की कमी:** अनियमित मौसम स्वरूप, सूखा और बाढ़ उच्च गुणवत्ता वाले चारे और चारा फसलों की उपलब्धता को कम कर देते हैं। इससे उत्पादन लागत बढ़ जाती है।
- **रोग और परजीवियों की व्यापकता में वृद्धि:** बढ़ता तापमान परजीवियों और रोगों के लिए अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करता है। इससे पशु स्वास्थ्य और उत्पादकता प्रभावित होती है।

जलवायु परिवर्तन पशुधन पर प्रभाव

- शारीरिक तनाव
- पोषण संबंधी तनाव
- रोग संबंधी तनाव
- खाद्य सुरक्षा में पशुधन के योगदान में कमी
- भारतीय पशुधन का कमजोर लचीलापन

के रूप में पोषक तत्वों से भरपूर घोल प्रदान करते हैं।

- **सौर ऊर्जा से संचालित शीतलन प्रणाली:** दूरदराज के क्षेत्रों में ऑफ-ग्रिड प्रशीतन प्रदान करके दूध की गुणवत्ता को बनाए रखा जाता है।

जल उपयोग दक्षता क्रियाएं

- **पुनर्चक्रण सिस्टम:** दूध उत्पादन करने वाले पार्लरों से पानी एकत्र करें और उसका पुन: उपयोग करें।
- **वर्षा जल संचयन:** शुष्क अवधि के दौरान पशुओं के लिए पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करता है।
- **स्मार्ट सिंचाई:** ड्रिप सिंचाई जैसी तकनीकें चारा फसलों की खेती के लिए पानी के उपयोग को कम करती हैं।

रोग प्रबंधन

- **प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली:** रोग के प्रकोप का पता लगाने के लिए एआई और आईओरी उपकरणों का उपयोग किया जाता है।
- **टीकाकरण कार्यक्रम:** जलवायु-संवेदनशील रोगों, जैसे टिकजनित रोगों, का अधिक प्रभावी ढंग से समाधान किया जाता है।

पशुओं को प्रशीतन प्रदान करने हेतु पानी का छिड़काव

कार्बन फुटप्रिंट न्यूनीकरण प्रौद्योगिकी

- **मीथेन अवरोधक:** बोवेर जैसे चारा एडिटिव्स, आंत्र किण्वन से मीथेन उत्सर्जन को कम करते हैं।
- **कार्बन पृथक्करण प्रथाएं:** डेरी से संबंधित उत्सर्जन की भरपाई के लिए कृषि वानिकी और पुनर्योजी चराई को शामिल करें।

अनुकूल नीतियां और क्षमता निर्माण

सरकारें और संगठन जलवायु-अनुकूल डेरी फार्मिंग का समर्थन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं:

- नवीकरणीय ऊर्जा अपनाने और प्रिसिजन लाइवस्टॉक फार्मिंग (पीएलएफ) उपकरणों के लिए सब्सिडी।
- किसानों को जलवायु-स्मार्ट प्रथाओं पर शिक्षित करने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम।
- प्रजनन, चारा प्रबंधन और रोग नियंत्रण में नवाचारों के लिए अनुसंधान निधि।

पशुधन उत्पादन जलवायु परिवर्तन में एक प्रमुख योगदानकर्ता है। टिकाऊ प्रथाओं को लागू करने और मांस की खपत को कम करने से इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। पशुधन पालन में एक स्थायी भविष्य प्राप्त करने के लिए आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय प्राथमिकताओं को संतुलित करना महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन के कारण टिकाऊ और जलवायु अनुकूल डेरी फार्मिंग की ओर बदलाव की आवश्यकता है। उन्नत प्रौद्योगिकियों को एकीकृत करके, प्रबंधन प्रथाओं में सुधार करके और नीति समर्थन को बढ़ावा देकर, डेरी क्षेत्र पर्यावरणीय प्रभाव को कम करते हुए उत्पादकता सुनिश्चित कर सकता है। इन नवाचारों को अपनाने से बदलती जलवायु के सामने वैश्विक खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण आजीविका की रक्षा होगी।

आहार एवं चारा प्रबंधन गर्मी के तनाव को करें कम

किसानों के लिए प्राथमिक चिकित्सा का महत्व

रीना कुमारी, सतीश भागवत राव आहेर और **सुब्रोतो नंदी**

"खेती शारीरिक रूप से कठिन कार्य है तथा इसमें विभिन्न प्रकार के जोखिम और समस्याएं शामिल हैं। खेत में काम करते समय या ग्रामीण आवास में किसान तथा उनके परिवारजनों को स्वास्थ्य संबंधी जोखिम हमेशा बना रहता है। किसान बाहरी परिवेश में अक्सर सुबह से रात तक श्रम-प्रधान कार्य करते हैं। इस कार्य में कृषि रसायनों का उपयोग, पशुधन को संभालना, भारी वजन उठाना, विभिन्न कृषि उपकरणों का उपयोग तथा प्रबंधन करना आदि प्रमुख जोखिम भरे कार्य हैं। इसके अलावा खेतों में या आसपास अक्सर ऐसे पशु भी होते हैं, जो कृषकों को हानि पहुंचा सकते हैं। कृषि कार्य के दौरान लगने वाली एक छोटी सी चोट या होने वाली स्वास्थ्य समस्या हानिकारक भी हो सकती है। इस प्रकार की समस्याओं को पेशेवर चिकित्सा सहायता पहुंचने से पहले प्राथमिक चिकित्सा के माध्यम से प्रबंधित किया जा सकता है। इससे तत्काल राहत मिलने के साथ-साथ बहुमूल्य जीवन की रक्षा भी की जा सकती है।"

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहां ग्रामीण आबादी पूर्णत: कृषि एवं इससे जुड़े कार्यों में संलग्न है। ग्रामीण किसान अक्सर कृषि कार्यों को पारंपरिक रूप में किया करते हैं, जिसके कारण उनके शरीर पर चोट या घाव का होना देखा जाता है। इस चोट या घाव के इलाज हेतु चिकित्सा परामर्श इनके पास उपलब्ध नहीं होता, जिससे समस्या गंभीर हो जाती हैं ऐसे में यदि कृषक प्राथमिक चिकित्सा के प्रति जागरूक हो जाएं तो वे न केवल गंभीरता से बच सकते हैं, बल्कि अपने आसपास के अन्य कृषकों को भी लाभ पहुंचा सकते हैं।

घायल या अस्वस्थ व्यक्ति को आपातकालीन चिकित्सा सहायता देना प्राथमिक

आईसीएमआर-राष्ट्रीय पर्यावरणीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्थान, भोपाल-462030 (मध्य प्रदेश)

प्राथमिक चिकित्सा के लाभ

- यदि किसी रोगी को तुरंत प्राथमिक चिकित्सा नहीं मिलती, तो उसकी स्थिति बिगड़ सकती है। बुनियादी देखभाल देने से रोगी को आपातकालीन चिकित्सा के आने तक स्थिर रखा जा सकता है।
- आपातकालीन चिकित्सा सेवाओं के आने से पहले बर्फ का पैक लगाने या जल्दी रगड़ने जैसी सरल प्रक्रियाएं दर्द को दूर और कम करने में मदद कर सकती हैं।
- प्राथमिक चिकित्सा तत्काल चिकित्सा देखभाल प्रदान करती है।
- प्राथमिक चिकित्सा चोटों को गंभीर होने से रोकती है। यह नुकसान के स्तर को कम करने में मदद करती है, प्रभावी प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करने से व्यक्ति के जल्दी ठीक होने की संभावना बढ़ जाती है।
- यह उपचार आमतौर पर न्यूनतम कौशल वाले एक औसत व्यक्ति द्वारा दिया सकता है।

चिकित्सा के रूप में जाना जाता है। ज्यादातर मामलों में, प्राथमिक चिकित्सा तब तक दी जाती है, जब तक कि स्थिति का पर्याप्त इलाज नहीं हो जाता या जब तक कोई पैरामेडिकल या डाक्टर आगे की देखभाल के लिए नहीं आता।

कीटनाशक का जोखिमपूर्ण छिड़काव

प्राथमिक उपचार में मामूली घावों, खरोंच या खरोंच की सफाई करना; पट्टियां और ड्रेसिंग लगाना; गैर-निर्धारित दवा का उपयोग; फफोले निकालना और गर्मी के तनाव से राहत के लिए तरल पदार्थ पीना आदि शामिल है। प्राथमिक चिकित्सा के तीन प्रमुख मार्गदर्शक सिद्धांत (1) आगे की चोटों/स्वास्थ्य नुकसान को रोकना (2) जीवन की रक्षा करना और (3) रिकवरी को बढ़ावा देना है।

खेती में प्राथमिक चिकित्सा का महत्व

खेती एक शारीरिक रूप से कठिन काम है। इसके अपने जोखिम और कठिनाइयां हैं। खेत में कृषि श्रमिक लंबे समय तक काम करते हैं, इससे उन्हें थकान हो सकती है। अगर वातावरण गर्म और सूखा है, तो निर्जलीकृत की समस्या हो सकती है।

किसान कृषि क्षेत्र में रसायनों का भी उपयोग करते हैं, जो गलत तरीके से संभालने पर जलने या विष का कारण बन सकते हैं। एक खेत में अक्सर ऐसे पशु भी होते हैं, जो कृषि श्रमिकों को चोटिल कर सकते हैं और उन पर हमला कर सकते हैं। खेती में अप्रत्याशित पशुधन को संभालना और भारी उपकरणों का प्रबंधन करना शामिल है। एक खेत में एक छोटी सी चोट कुछ कारकों के कारण हानिकारक हो सकती है, जिन्हें पेशेवर चिकित्सा सहायता पहुंचने से पहले प्रबंधित किया जाना चाहिए। कई दुर्घटनाएं आधुनिक कृषि उपकरणों के कारण होती हैं।

पशु द्वारा चोटिल होने पर तुरंत उपचार जरूरी

कृषि चोटें अक्सर दूरदराज में होती हैं, जिससे दैनिक आधार पर संभावित आपात स्थिति पैदा हो सकती है। इन परिस्थितियों के लिए तैयार रहना आवश्यक है। त्वरित और कुशल प्राथमिक उपचार चोटों को काफी कम कर सकता है और जीवन बचा सकता है। जहां श्रमिक काम करते हैं वहां चिकित्सा आपात स्थिति से निपटने के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो वह खेत पर आपातकालीन/प्राथमिक चिकित्सा किट में होना आवश्यक है।

प्राथमिक चिकित्सा किट

प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करने के लिए एकत्रित आवश्यक सामग्री प्राथमिक किट कहलाती है। एक प्राथमिक चिकित्सा किट में विभिन्न सामग्री होनी चाहिए जो आपातकाल में इस्तेमाल होती है।

प्राथमिक चिकित्सा में सावधानी तथा किट का रखरखाव

- प्राथमिक चिकित्सा प्रदान करने हेतु उचित शिक्षा प्राप्त करें और नियमित रूप से अपडेट रहें। प्राथमिक उपचार देने में उचित प्रशिक्षण प्राप्त करने से लोग भय, संकट या चोट से बच सकते हैं। स्वास्थ्य और सुरक्षा का पर्याप्त ज्ञान होने से बढ़ने व्यक्ति को समस्याओं के बढ़ने से बचने के लिए अपनी जीवनशैली की आदतों और विकल्पों के बारे में अधिक जागरूक बनाता है।
- प्राथमिक चिकित्सा किट में शामिल सामग्री की विस्तृत जानकारी प्राप्त करें। प्रत्येक सामग्री के उपयोग हेतु आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त करें।
- प्राथमिक चिकित्सा किट को सुरक्षित स्थान पर और बच्चों की पहुंच से दूर रखें।
- प्राथमिक चिकित्सा किट और आपूर्ति कार्यस्थल के वातावरण और विशेष संकटों के आधार पर भिन्न हो सकती है। अपने कार्यस्थल के लिए प्राथमिक चिकित्सा किट रखते समय सभी आशंकाओं पर विचार करें। प्राथमिक चिकित्सा किट नियमित रूप से यथास्थान रहें।
- प्राथमिक चिकित्सा किट 15 मिनट के भीतर पहुंचने में सक्षम होनी चाहिए।
- चिकित्सा आपात स्थिति में शामिल होने वाले सभी लोगों के लिए नजदीकी चिकित्सक का नाम और टेलीफोन नंबर भी शामिल किया जाना चाहिए।
- प्रत्येक तीन महीने में किट की जांच करें। समाप्त हो चुकी आपूर्ति का निरीक्षण करें।
- प्राथमिक चिकित्सा किट की नियमित सफाई करें तथा यह सुनिश्चित करें आपूर्ति मौसम में अनुसार है।

प्राथमिक चिकित्सा किट

- घायलों की देखभाल करने से पहले अपने हाथ धो लें। हाथ धोने के लिए साबुन और पर्याप्त पानी का उपयोग करें।
- एंटीबैक्टीरियल हैंड सैनिटाइजर का भी उपयोग कर सकते हैं। अपने प्राथमिक चिकित्सा किट में दिए गए डिस्पोजेबल दस्ताने पहनें।
- दवाई की अनुशंसित खुराक लेना सुनिश्चित करें, अत्यधिक सेवन जानलेवा साबित हो सकता है।
- सभी दवाइयों की समाप्ति तिथि या उपयोग की तिथि होती है, आमतौर पर लेबल पर स्पष्ट रूप से बताई जाती है, समाप्ति तिथि से पहले उनका निपटान किया जाना चाहिए।

सारणी 1. प्राथमिक चिकित्सा किट की संरचना

ड्रेसिंग सामग्री	जालीदार रोलर पट्टियां (1,2 और 6 इंच चौड़ी), चिपकने वाला टेप (विभिन्न चौड़ाई), त्रिकोणीय पट्टी, कैंची (कपड़े काटने के लिए)
कुछ गैर निर्धारित दवाइयां	एंटीसेप्टिक लोशन, बुखार की दवा, दर्द निवारक दवा, एंटासिड्स, ओआरएस (इलेक्ट्रोलाइट), कैलामाइन लोशन आदि
घायल अंगों को स्थिर करने के लिए	लकड़ी, प्लास्टिक की खपच्चियां, इलास्टिक रैप का रोल (स्प्लिंट जोड़ने के लिए) आदि
अन्य	बर्फ के पैक, डिस्पोजेबल रबर के दस्ताने, साबुन, बोतलबंद पानी, चिमटी, सेफ्टी पिन, थर्मामीटर आदि

आमतौर पर एक प्राथमिक चिकित्सा किट की अनुमानित लागत अधिकतम 2000 रुपये तक हो सकती है। आस-पड़ोस के किसान एक समूह बनाकर किसी प्रतिनिधि को प्राथमिक चिकित्सा प्रशिक्षण हेतु प्रोत्साहित कर सकते हैं।

प्रशिक्षित प्रतिनिधि द्वारा समूह के अन्य साथियों को भी प्राथमिक चिकित्सा की जानकारी प्रदान की जा सकती है तथा इसके उपयोग के संबंध में जागरूक किया जा सकता है। प्रशिक्षण के बाद निधि संकलन कर सामूहिक प्राथमिक चिकित्सा किट क्रय किया जा सकता है। इस प्रकार प्राथमिक चिकित्सा से ग्रामीण क्षेत्र में किसान एवं उनके परिवार के सदस्य आपातकालीन परिस्थितियों में होने वाले स्वास्थ्य जोखिम को पेशेवर चिकित्सा सहायता पहुचने तक प्रबंधित या कम कर सकते हैं। ■

कृषि में ड्रोन की बढ़ती भूमिका

संदीप कुमार[1], जनक राज[2] और राम स्वरूप चौधरी[2]

"ड्रोन तकनीक कृषि में क्रांति ला रही है, जिससे पारंपरिक यांत्रिक कार्यों को कुशल और स्वचालित प्रक्रियाओं में परिवर्तित किया जा रहा है। कृषि उद्योग ने खेती को आधुनिक बनाने के लिए दुनियाभर में ड्रोन को अपनाना शुरू कर दिया है। ड्रोन, जिन्हें सुदूर संचालित विमान प्रणाली भी कहा जाता है, में प्रणोदन प्रणाली, प्रोग्रामयोग्य नियंत्रक (सैटेलाइट नेविगेशन के साथ या बिना) और स्वचालित उड़ान जैसी सुविधाएं होती हैं और ये कैमरे या स्प्रेइंग सिस्टम जैसे वजनी उपकरण को ले जा सकते हैं। जब इनका उपयोग कृषि में किया जाता है, तो इन्हें कृषि ड्रोन कहा जाता है, जिन्हें यू.ए.वी. (मानव रहित हवाई प्रणालियां) कहा जाता है। ये ड्रोन फसल की निगरानी, फसल उपचार, निरीक्षण, सिंचाई प्रबंधन, मृदा विश्लेषण और क्षति आकलन में महत्वपूर्ण आंकड़ों की प्रविष्टि प्रदान करते हैं। सटीक सर्वेक्षणों की मदद से ड्रोन फसल की उपज को सुधारने में मदद करते हैं और समय व लागत को कम करता है। मूल्यवान अंतर्दृष्टि एकत्र करने और कार्यों को कुशलतापूर्वक करने की क्षमता ने ड्रोन विशिष्ट कृषि का एक अनिवार्य हिस्सा बना दिया है।"

परिशुद्ध कृषि, जिसे प्रिसिजन एग्रीकल्चर या साइट-स्पेसिफिक फार्मिंग भी कहा जाता है। एक उन्नत दृष्टिकोण है, जो कृषि प्रथाओं की दक्षता, उत्पादकता और स्थिरता को बेहतर बनाने के लिए प्रौद्योगिकी, आंकड़ों और विशिष्ट उपकरणों का उपयोग करता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रौद्योगिकी का उपयोग करके फसलों की निगरानी, विश्लेषण और प्रबंधन को अधिक सटीकता से बढ़ावा देना है।

कृषि में ड्रोन के लाभ

सुदूर संवेदन और आंकड़े संग्रहण

ड्रोन जो सेंसर्स, कैमरे और छवि निर्माण तकनीकों से लैस होते हैं, फसलों और खेतों की उच्च-रिजोल्यूशन छवियां और मल्टीस्पेक्ट्रल आंकड़े संग्रहीत कर सकते हैं। ये आंकड़े फसल की सेहत, पोषक तत्वों की कमी, रोग की उपस्थिति और कीट संक्रमण के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। फसल में किसी भी समस्याओं का शीघ्र पता लगाने से, किसान लक्षित उपाय कर सकते हैं, ताकि फसल की हानि को रोका जा सके और संसाधनों का उपयोग बेहतर किया जा सके।

फसल निगरानी और प्रबंधन

ड्रोन किसानों को बड़े क्षेत्रों की तेजी से और कुशलतापूर्वक निगरानी करने की अनुमति देते हैं। नियमित हवाई सर्वेक्षण उन्हें फसल की वृद्धि, विकास और समग्र स्वास्थ्य को पूरे मौसम का पता करने में सक्षम बनाते हैं। यह तकनीक वास्तविक समय पर निर्णय लेने का समर्थन करती है, जैसे कि सिंचाई, उर्वरक और कीट नियंत्रण नीतियों को समायोजित करना आदि।

उपज आकलन

ड्रोन खेतों का सटीक 3डी मानचित्र बना सकते हैं। इससे किसानों को फसल की उपज का अधिक सटीक अनुमान मिल सकता है। यह विस्तृत जानकारी फसल की कटाई की योजना, भंडारण प्रबंधन और खरीदारों के साथ अनुबंधों की बातचीत के लिए महत्वपूर्ण है। खेत की स्थिति और फसल की क्षमता का स्पष्ट अवलोकन प्रदान करके, ड्रोन संचालन को सुगम बनाते हैं और कृषि प्रक्रिया के दौरान निर्णय लेने को बेहतर बनाते हैं।

[1]शोध छात्र, कृषि प्रसार शिक्षा विभाग; [2]शोध छात्र, सस्य विज्ञान विभाग, श्री कर्ण नरेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर

आदानों का सटीक उपयोग

ड्रोन जो स्प्रेयर या स्प्रेडर से लैस होते हैं। वे उर्वरकों, कीटनाशकों और शाकनाशी को सटीक रूप से उपयोग कर सकते हैं। यह लक्षित दृष्टिकोण आदानों के क्षरण को कम करता है, पर्यावरणीय प्रभाव को न्यूनतम करता है और उत्पादन लागत को कम करता है। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित करता है कि रसायन केवल जहां आवश्यक हो, वहीं लागू किए जाएं। रसायन उपयोग प्रक्रिया को अनुकूलित करके, ड्रोन संसाधन दक्षता और स्थिरता को बेहतर बनाने में मदद करते हैं।

समय और श्रम की बचत

पारंपरिक यांत्रिक क्षेत्र निरीक्षण समय-साध्य और श्रम-गहन होता है। हालांकि, ड्रोन बड़े क्षेत्रों को तेजी से कवर कर सकते हैं। इससे सर्वेक्षण के लिए आवश्यक समय में महत्वपूर्ण कमी आती है। यह दक्षता किसानों और कृषि वैज्ञानिकों को अन्य महत्वपूर्ण कार्यों पर समय और संसाधन आवंटित करने की अनुमति देती है। इससे समग्र उत्पादकता बढ़ती है और कृषि प्रथाओं के प्रबंधन एवं अनुकूलन के लिए एक अधिक केंद्रित दृष्टिकोण की अनुमति मिलती है।

लाभ से भरपूर ड्रोन का उपयोग

महत्व

ड्रोन न केवल समग्र प्रदर्शन को बढ़ाते हैं, बल्कि किसानों को विभिन्न चुनौतियों का सामना करने और विशिष्ट कृषि के माध्यम से महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त करने में भी मदद करते हैं। जैसे-जैसे कृषि ड्रोन का बाजार बढ़ रहा है, यू.ए.वी. (मानव रहित हवाई प्रणालियां) पारंपरिक खेती के तरीकों से संबंधित मानव त्रुटियों और अक्षमताओं को कम करते हैं। ये किसानों को बढ़ी हुई दक्षता, बेहतर उपज और कम लागत प्रदान करते हैं। हालांकि, कुछ किसान ड्रोन तकनीक को अपनाने में संकोच कर सकते हैं। उन्हें नौकरी खोने या अपर्याप्त ज्ञान और प्रशिक्षण की चिंता हो सकती है। कृषि में ड्रोन के प्रभाव को पूरी तरह से समझने के लिए, यह महत्वपूर्ण है कि उनके द्वारा प्रदान किए गए लाभों और अपनाने में बाधाओं दोनों की जांच की जाए।

कृषि ड्रोन का निरंतर बढ़ता प्रचलन

पर्यावरणीय स्थिरता

ड्रोन द्वारा सक्षम विशिष्ट किसानों को केवल आवश्यक जगह पर रसायनों का प्रयोग करने में मदद करता है। इससे कुल उपयोग कम होता है। यह लक्षित दृष्टिकोण इन रसायनों के पर्यावरणीय और पारिस्थितिकीय प्रभाव को न्यूनतम करता है। अधिक स्थिर खेती की प्रथा को बढ़ावा देता है और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा करता है।

जोखिम प्रबंधन

ड्रोन प्राकृतिक आपदाओं या विपरीत मौसम के बाद फसल की क्षति का मूल्यांकन कर सकते हैं। फसल बीमा दावों के लिए सटीक आंकड़े प्रदान कर सकते हैं। किसानों को पुनर्प्राप्ति प्रयासों की योजना बनाने में मदद कर सकते हैं। यह क्षमता सटीक आकलन सुनिश्चित करती है और पुनर्प्राप्ति प्रक्रिया के दौरान प्रभावी निर्णय लेने का समर्थन करती है।

योजना और निर्णय समर्थन

ड्रोन आंकड़ों को भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.) और पूर्व में दर्ज रिकॉर्ड के साथ एकीकृत किया जा सकता है। इससे दीर्घकालिक योजना और निर्णय-निर्माण को बढ़ावा मिलता है। यह एकीकरण फसलचक्र नीतियों, खेत क्षेत्र निर्धारण और अवसंरचना योजना का समर्थन करता है, जिससे अधिक सूचित और नीतिक कृषि प्रबंधन संभव होता है।

अनुसंधान और विकास

ड्रोन कृषि अनुसंधान को उन्नत करते हैं, शोधकर्ताओं को फसल की आनुवंशिकी, पादप जैविक घटना विज्ञान और विभिन्न प्रबंधन प्रथाओं पर प्रतिक्रिया के बारे में महत्वपूर्ण आंकड़े प्रदान करते हैं। यह मूल्यवान जानकारी फसलों की समझ को बढ़ाती है, बेहतर कृषि तकनीकों के विकास का समर्थन करती है और अधिक प्रभावी और स्थिर खेती की प्रथाओं में योगदान करती है।

कृषि ड्रोन विशिष्ट कृषि में आवश्यक उपकरण हैं, ये सुदूर संवेदन, आंकड़े संग्रहण और निर्णय समर्थन को मिलाकर उत्पादकता, संसाधन दक्षता और स्थिरता को बढ़ाते हैं। ड्रोन कृषि विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण जैसे क्षेत्रों में कीटनाशक छिड़काव के लिए महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करते हैं, पारंपरिक श्रम-गहन और हानिकारक कृषि क्रियाओं को बदलते हैं।

ड्रोन उच्च-रिजोल्यूशन छवियां कैप्चर करते हैं जो मृदा की स्थिति, पौधों की सेहत और फसल उपज की पूर्व जानकारी प्रदान करती हैं। इनके उपयोग से व्यक्तिगत पौधों की सटीक पहचान और विश्लेषण कर सकते हैं, ताकि फसल में तनाव का पता लगाया जा सके। इससे किसानों को फसल में रोग फैलने से रोकने, उर्वरीकरण को अनुकूलित करने, सिंचाई प्रबंधन करने, जलवायु परिवर्तन और अप्रत्याशित मौसम के प्रभावों को कम करने के लिए पूर्व-नियोजन की अनुमति मिलती है। जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी में उन्नति होती है, ड्रोन द्वारा कृषि के भविष्य को आकार देने में और भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की संभावनाएं हैं।

मृदा अपरदन के कारक एवं निवारण

शिव मंगल प्रसाद[1], **सौम्य साहा**[1], **विभाष चन्द्र वर्मा**[1], **पीयूष कुमार जायसवाल**[2] और **पीयूष भार्गव**[2]

"गर्मी के मौसम में धूल भरी मटमैली आंधियां जिसे हम लू कहते हैं, वहीं गर्मियों के बाद बरसात शुरू होते ही नालों, नहरों, नदियों में मटमैले पानी का बहना आपने देखा होगा। क्या कभी सोचा है कि ऐसा क्यूं होता है, शायद ही कभी इस पर ध्यान देते हैं। इस पूरे प्रकरण में आहार दाता-जीवन का आधार हमारी मिट्टी की क्षति होती है। प्रत्येक वर्ष लाखों टन मिट्टी की ऊपरी परत बहकर जलाशयों में समा जाती है। धरातल की 15 सें.मी. की परत कृषि के लिए सबसे जरूरी और उपजाऊ मानी जाती है और इसे बनने में हजारों वर्ष लग जाते हैं। गर्मियों में जब तेज हवा चलती है, जो कभी-कभी अपने साथ धूलकण लिए होती है। यह धूल खेतों की ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी होती है, जिसे वायु अपने साथ उड़ाकर ले जाती है। फिर बरसात में वनस्पति रहित भूमि पर वर्षा की तेज बौछारें पड़ती हैं, तो ऊपरी सतह की उपजाऊ मिट्टी घुलकर बह जाती है। इन दोनों प्रक्रियाओं में जो घटना घटती है उसे मिट्टी अपरदन कहते हैं, जो बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है। खेतों के अलावा अन्य मृदा से भी यह अपरदन हो रहा है और इस क्षय अथवा हानि के लिए जिम्मेदार भी हम हैं। अपनी मिट्टी को कैसे नष्ट कर रहे हैं इसे जानने के लिए कुछ तथ्यों को जानना जरूरी है, जो लेख में दिए जा रहे हैं।"

मनुष्य अपनी जरूरतों को पूरा करने तथा ज्यादा धन कमाने के लिए वनों की कटाई एवं विविधता को हानि पहुंचाते हैं। धरती के आवरण का दोहन किया जा रहा है। मृदा अपरदन निरंतर हो रहा है, कभी-कभी इन वनों में आग भी लगा दी जाती है। अपनी जरूरतों के लिए मनुष्य द्वारा निरंतर प्रकृति एवं उसकी विविधताओं का हनन किया जा रहा है। यह क्रिया मृदा अपरदन का कारक होती है।

[1]केन्द्रीय वर्षाश्रित ऊपराऊं भूमि चावल अनुसंधान केन्द्र, हजारीबाग; [2]बिरसा कृषि विश्वविद्यालय, रांची

पशुओं द्वारा अधिकतम चराई

चरागाहों, प्राकृतिक क्षेत्रों और कृषि योग्य भूमि पर पशुओं द्वारा अंधाधुंध चराई भी प्राकृतिक आवरण को हानि पहुंचा रही है। पशुओं के लिए वृक्ष से पत्तों की अधिक तुड़ाई से भी वृक्ष नष्ट हो जाते हैं। इस तरह भी प्राकृतिक आवरण का सफाया होता है।

भवन एवं सड़क निर्माण

भवन एवं सड़क निर्माण के लिए जंगलों को नष्ट करना, ईंट बनाने, कच्ची सड़क या कच्चे मकानों के निर्माण के लिए मृदा की कटाई भी अपरदन को बढ़ावा देती है।

कृषि की दोषपूर्ण विधियां

कृषि से जुड़े लोग इसके लिए जिम्मेदार

हैं अतः इसकी विशेष चर्चा ज्यादा जरूरी है। यदि जमीन ढालू हो, तो ढाल की दिशा में जुताई मृदा अपरदन का कारण बनती है, जरूरत से ज्यादा या गलत ढंग से सिंचाई भी हानिकारक है। रासायनिक उर्वरकों का ज्यादा उपयोग भी जमीन की संरचना को बिगाड़ देता है। मृदा की संरचना बिगड़ जाने से इसका ह्रास शुरू हो जाता है। निरंतर धान्य फसलें जैसे-धान, गेहूं, मक्का इत्यादि तथा कुछ फसलें जैसे-ज्वार-बाजरा की लगातार खेती मृदा अपरदन को बढ़ावा देती हैं।

मृदा अपरदन से होने वाले अन्य परिणाम

- मृदा के क्षरण के साथ-साथ उर्वरता में कमी
- खेती योग्य भूमि का बंजर होना
- रेतीले प्रदेशों का तेजी से विस्तार
- नदियों, नहरों, तालाबों, झीलों एवं अन्य जल स्रोतों इत्यादि का भरना
- बाढ़ की तीव्रता एवं संख्या में वृद्धि
- आवागमन के साधनों (सड़क, रेल) को संकट
- प्राकृतिक वनस्पतियों, वन्य जंतुओं का ह्रास
- अधिक तापमान और वर्षा के औसत में कमी
- बार-बार सूखा पड़ना
- जलवायु परिवर्तन

उन्नत फसलीकरण से मृदा अपरदन का बचाव संभव

ढालू जुताई से मृदा क्षरण

वर्षा जल से मृदा का अपरदन

मृदा को अपरदन से बचाव हेतु महत्वपूर्ण कदम

बांध बनाना

खेत के लम्बे ढाल को सुविधाजनक छोटे-छोटे खेतों में बांट दिया जाता है, मेड़ों को ऊंचा किया जाता है और उन पर घास लगाई जाती है। इन बाधों पर घास लगाने से ये मजबूत हो जाते हैं और पानी से होने वाले मृदा कटाव को रोकते हैं।

समतलीकरण

ऊंचे-नीचे खेतों को समतल करना चाहिए, समतलीकरण का कार्य बांध बनाने के बाद करना चाहिए। बरसात के मौसम के बाद खेतों की मृदा नम रहती है, उस समय यह क्रिया करने में आसानी होती है। खेतों के अलावा अन्य मृदा यानी परती/बंजर इत्यादि का भी समतलीकरण करने से भी मृदा कटाव रूकता है।

सीढ़ीदार खेती

ढालूदार या पहाड़ों पर खेती की जमीन को सीढ़ीनुमा बनाकर खेती करनी चाहिए। ढाल के विपरीत जुताई करनी चाहिए, जिससे मृदा का कटाव कम हो।

आवरण फसलें लगाना

भूमि ढकने वाली फसलें जैसे-मूंग, उड़द, लोबिया, मूंगफली इत्यादि की खेती करनी चाहिए। परती जमीनों को समतलीकरण करने के बाद इन दलहनी फसलों से आच्छादित करना चाहिए और बंजर भूमि में घास या अन्य वनस्पतियों के बीज मई या जून में बिखेर देना चाहिए, ताकि बारिश के समय इनका अंकुरण एवं विकास हो सके।

फसलचक्र अपनाना

लगातार धान-गेहूं या एक ही फसलचक्र अपनाने से विभिन्न समस्याएं आती हैं। इस प्रकार उचित फसलचक्र में दलहनी फसलों यथा मूंग, उड़द, लोबिया, मूंगफली, अरहर, चना, मसूर इत्यादि को लगाना चाहिए।

पलवार का उपयोग

पौधों के अवशेषों, पत्तियों, पुआल, भूसा इत्यादि से भूमि को ढकने से तेज हवा, वर्षा एवं धूप से जमीन की रक्षा होती है। इसके साथ ही नमी का भी संरक्षण होता है। यह मृदा अपरदन को कम करता है।

वायुरोधक पट्टियां लगाना

दक्षिण-पश्चिम दिशा में वायुरोधक वृक्ष लगाने चाहिए। गर्मियों में तेज गर्म हवा चलती है, जो अपने साथ ऊपरी परत की उपजाऊ मृदा को उड़ा ले जाती है। वृक्षों में शीशम, नीम, बबूल, जंगल जलेबी, सिरिस इत्यादि को रोपण कर सकते हैं।

घास लगाना

घासों को बंजर या मृदा क्षरण समस्या से ग्रसित मृदा में लगाना चाहिए। इसके लिए दूब, अंजन, खस, जापानी घास इत्यादि उपयुक्त हैं।

वृक्षारोपण

वृक्षारोपण अनेक प्रकार से मानव हित का कार्य करते है। मृदा संरक्षण के साथ-साथ इनके अनेक लाभ हैं, जिसे प्रोत्साहन देना चाहिए।

सही एवं विवेकपूर्ण कृषि कार्य

उचित जुताई एवं भूमि की तैयारी,जल प्रबंधन, संतुलित उर्वरक प्रबंधन पर ध्यान देना चाहिए। फसलचक्र में सही फसल का चयन करना चाहिए। खेत की जुताई कब, कितनी और कैसे करनी है, यह अच्छी तरह ज्ञात होनी चाहिए।

हम अपनी मूल जरूरतों के लिए मृदा पर पूर्ण रूप से निर्भर हैं अतः अस्तित्व के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण और अनिवार्य है। मृदा की ऊपरी परत जो उपजाऊ है का निरंतर दोहन मनुष्य के लिए भयावह हो सकता है। विश्व के अन्य कई भागों में भी खेती लायक मृदा भी बंजर हो गयी है। मृदा अमूल्य प्राकृतिक धरोहर है अतः इसमें कोई भी कार्य या गतिविधि उन्नत तकनीक से होना चाहिए, ताकि इसके कण-कण की रक्षा हो सके। ■

डेरी फार्म की उत्पादन क्षमता में वृद्धि

विपिन मौर्य

दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में सुधार के लिए संसाधनों का कुशल उपयोग आवश्यक है। इससे न केवल दुग्ध उत्पादकता में वृद्धि होती है, बल्कि पर्यावरणीय प्रभाव भी कम होता है। आधुनिक तकनीकों, जैसे कि मिल्किंग मशीनों, संसर और डेटा एनालिटिक्स का उपयोग करके किसानों को अपने फार्म के संचालन में सुधार करने में मदद मिलती है। इससे उत्पादन की लागत में कमी आती है और लाभप्रदता बढ़ती है। इसके अलावा दुग्ध व्यवसाय में विभिन्न चुनौतियां भी मौजूद हैं, जैसे-गायों के स्वास्थ्य का प्रबंधन, उत्पादन की लागत और बदलते बाजार की आवश्यकताएं। इन चुनौतियों का समाधान करने के लिए किसानों को सतर्क रहना पड़ता है और नियमित रूप से दूध उत्पादन की निगरानी करनी होती है। वहीं रोगी गायों का समय पर उपचार और उचित पोषण सुनिश्चित करने से फार्म की उत्पादकता में सुधार होता है।

दुग्ध व्यवसाय कृषि क्षेत्र का एक अहम हिस्सा है, जो दूध उत्पादन पर आधारित होता है। यह दुनियाभर में खाद्य आपूर्ति का एक प्रमुख स्रोत है और उपभोक्ताओं के लिए आवश्यक पोषण प्रदान करता है। दुग्ध व्यवसाय से स्थानीय समुदायों में रोजगार के अवसर पैदा होते हैं और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है, जिससे क्षेत्रीय विकास को भी प्रोत्साहन मिलता है।

दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में सुधार की आवश्यकता कई कारणों से होती है। उत्पादन और उत्पादकता में सुधार किसानों को आर्थिक स्थिरता और मुनाफा देता है। यह गायों के स्वास्थ्य और कल्याण को बढ़ाता है, जिससे उनके तनाव में कमी आती है और वे अधिक उत्पादक बनती हैं। उच्च गुणवत्ता वाला दूध उपभोक्ताओं के लिए सुरक्षित और पौष्टिक होता है, जिससे उनकी स्वास्थ्य संबंधी जरूरतें पूरी होती हैं।

दुग्ध व्यवसाय में निवेश करने और सुधार करने से किसानों को दीर्घकालिक सफलता प्राप्त होती है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है और वे आधुनिक प्रबंधन तकनीकों और नवाचारों को अपनाकर उत्पादन और उत्पादकता में सुधार कर सकते हैं। इससे न केवल किसानों के जीवन स्तर में बदलाव आता है, बल्कि उपभोक्ताओं को भी उच्च गुणवत्ता वाले दुग्ध उत्पाद मिलते हैं।

आज के दुग्ध उत्पादकों को उच्च गुणवत्ता वाले दूध की बढ़ती मांग का सामना करना पड़ रहा है। इसके समाधान हेतु उत्पादकों को दुग्ध उपक्रमों में उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाने के तरीकों की खोज करनी होगी। डेरी फार्म में सुधार के लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं:

गुणवत्तापूर्ण पशुधन का चयन

उन्नत नस्लों का चयन करें, जो अधिक दूध उत्पादन कर सकें और जिनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी हो। ये गाय

सहायक प्राध्यापक, पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान संकाय, कृषि विज्ञान संस्थान, राजीव गांधी दक्षिणी परिसर, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (उत्तर प्रदेश)

बेहतर स्वास्थ्य और लंबी जीवन अवधि वाली हों। पशुधन चयन उत्पादन क्षमता बढ़ाने और रोग प्रतिरोधकता को बढ़ाने में मदद करता है।

नस्ल सुधार कार्यक्रमों के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाले वंश को बनाए रखें। इसके लिए कृत्रिम गर्भाधान और चयनात्मक प्रजनन जैसे तरीकों का उपयोग किया जा सकता है। कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से उच्च गुणवत्ता वाले सांडों के शुक्राणु का उपयोग करके गायों का गर्भाधान किया जा सकता है। इससे बेहतर गुणों वाली संतानों का उत्पत्ति होता है।

प्रजनन के समय को सही से प्रबंधित करना महत्वपूर्ण है। गर्भधारण के लिए सही समय का चयन करें ताकि गायों का दूध उत्पादन और उत्पादन चक्र बेहतर हो। आनुवंशिक मूल्यांकन कार्यक्रमों के माध्यम से गायों और सांडों के गुणों का विश्लेषण करें। इससे उच्च गुणवत्ता वाले पशुधन के चयन में मदद मिलती है। गायों की वंशावली का सही से रिकॉर्ड रखें ताकि उच्च गुणवत्ता वाले पशुधन का चयन किया जा सके। इससे नस्ल सुधार और प्रजनन में मदद मिलती है। आनुवंशिकी और प्रजनन के क्षेत्र में नई तकनीकों जैसे कि जीन फेरबदल और आनुवंशिक अनुक्रमण का उपयोग करें। इससे पशुधन में वांछनीय गुणों का सुधार संभव होता है।

अभिलेख प्रबंधन

प्रत्येक गाय के स्वास्थ्य, उत्पादकता, प्रजनन स्थिति और अन्य महत्वपूर्ण जानकारी का व्यक्तिगत रिकॉर्ड रखें। इससे प्रत्येक गाय के लिए विशेष देखभाल की योजना बनाना आसान होता है। गायों को उनके उत्पादन, स्वास्थ्य और अन्य विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत करें। इससे प्रबंधन के लिए स्पष्टता मिलती है।

थन स्वास्थ्य: गायों के स्तनों की नियमित जांच करें और थनैला जैसे रोगों की रोकथाम के लिए सावधानी बरतें। इससे दूध की गुणवत्ता और उत्पादन में सुधार होगा।

गुणवत्तापूर्ण पशुचयन से दुग्ध उत्पादन क्षमता का विकास

परजीवी नियंत्रण: गायों को परजीवियों से मुक्त रखने के लिए नियमित रूप से परजीवी नियंत्रण कार्यक्रम अपनाएं। यह उनके स्वास्थ्य और उत्पादकता को बनाए रखने में मदद करता है।

प्रजनन स्वास्थ्य: गायों के प्रजनन स्वास्थ्य पर ध्यान दें और गर्भावस्था, प्रसव और प्रसवोत्तर देखभाल को सही से प्रबंधित करें। गायों के स्वास्थ्य की सक्रिय निगरानी करें और किसी भी बदलाव को तुरंत पहचानें। इससे जल्दी उपचार करके समस्याओं को रोकने में मदद मिलती है। गायों के व्यवहार पर नजर रखें। उनके व्यवहार में अचानक बदलाव रोग या तनाव का संकेत हो सकते हैं। पशु चिकित्सक के साथ नियमित संपर्क बनाए रखें। वे गायों की बेहतर देखभाल के लिए महत्वपूर्ण सलाह दे सकते हैं।

नियमित दूध दुहने का समय: गायों को नियमित समय पर दुहना चाहिए। इससे गायों की शारीरिक घड़ी के अनुसार दूध उत्पादन में सुधार होता है। दुहने की प्रक्रिया में सही तकनीक का उपयोग करें। इस से गायों को कम तनाव होता है और स्तन संबंधी समस्याओं का जोखिम भी कम होता है।

गौशाला में स्वच्छता है जरूरी

मौसम की चुनौतियों का प्रबंधन

गायों को मौसम की चुनौतियों जैसे-गर्मी, सर्दी, बारिश आदि से बचाने के लिए उपयुक्त उपाय करें। सही आवास और वेंटिलेशन के माध्यम से गायों को मौसम की कठिनाइयों से सुरक्षित रखें।

आधुनिक तकनीकों का उपयोग

डेरी फार्म में स्वचालित उपकरणों और प्रौद्योगिकी का उपयोग करें जैसे कि मिल्किंग मशीन, सेंसर आदि। इससे उत्पादन में तेजी आती है और गुणवत्ता में सुधार होता है।

डिजिटल प्रबंधन प्रणाली

गायों के स्वास्थ्य, दुहने और अन्य गतिविधियों का डेटा डिजिटल रूप से रिकॉर्ड करें। इससे फार्म के संचालन में सुधार होता है। डेटा का विश्लेषण करें और उसके आधार पर निर्णय लें ताकि फार्म की उत्पादकता और दक्षता बढ़ सके।

आवास प्रबंधन

डेरी गायों के लिए उचित आवास और पर्यावरण का प्रबंधन उनकी स्वास्थ्य, उत्पादकता और समग्र कल्याण के लिए महत्वपूर्ण है। सही आवास और पर्यावरण व्यवस्थाएं गायों के तनाव को कम करती हैं, उनकी उत्पादन क्षमता को बढ़ाती हैं और रोगों के जोखिम को कम करती हैं। डेरी गायों के लिए आवास का डिजाइन खुला और हवादार होना चाहिए। वहां पर्याप्त प्राकृतिक प्रकाश और वेंटिलेशन होना चाहिए। इससे गायों को आरामदायक माहौल मिलता है और तनाव कम होता है।

गायों के आवास और उनके आसपास की जगह की नियमित साफ-सफाई आवश्यक

है। इससे संक्रमण और रोगों के जोखिम को कम किया जा सकता है। साफ बिछावन और चारे की जगह भी महत्वपूर्ण है। गाय उच्च तापमान और नमी के लिए संवेदनशील होती है। गर्मी के मौसम में ठंडक की व्यवस्था और सर्दी के मौसम में गर्मी की व्यवस्था करनी चाहिए। इससे गायों का स्वास्थ्य और उत्पादकता सुरक्षित रहती है। आरामदायक बिछावन की नियमित सफाई और रखरखाव भी महत्वपूर्ण है। यह उनकी आराम की गुणवत्ता को बढ़ाता है और दूध उत्पादन वृद्धि में मदद करता है।

प्रत्येक गाय को पर्याप्त स्थान मिलना चाहिए ताकि वे आराम से घूम सकें और लेट सकें। भीड़भाड़ से गायों में तनाव बढ़ सकता है। आवास में प्रत्येक समय स्वच्छ ताजा पानी की उपलब्धता सुनिश्चित करें। गायों को घूमने और चरने के लिए बाहरी क्षेत्र का प्रावधान करें। इससे वे स्वस्थ और खुश रहती हैं और चारे की लागत भी कम होती है। अत्यधिक शोर और ध्वनि प्रदूषण से गायों को तनाव हो सकता है। आवास की नियमित निगरानी और रखरखाव से संरचनात्मक समस्याओं और जोखिमों को जल्दी पहचानकर सुधार किया जा सकता है।

डेरी फार्म और उपकरणों की नियमित सफाई करें। स्वच्छता सुनिश्चित करने से दूध की गुणवत्ता बढ़ती है और पशुओं की रोगों का जोखिम कम होता है। गायों के आवास, चारे की जगह और दुहने के उपकरणों की नियमित साफ-सफाई करें। उपकरणों और आवास की कीटाणुशोधन करें ताकि संक्रामक रोगों की आशंका कम हो।

पशु स्वास्थ्य प्रबंधन

पशुओं के स्वास्थ्य की नियमित जांच करें और रोगों से बचाव के लिए टीकाकरण और उपचार करें। स्वस्थ पशु ही अच्छी उत्पादकता दे सकते हैं। पशु चिकित्सक से

मिल्किंग मशीन पार्लर

उचित आहार और पोषण

पशुओं को सही और संतुलित आहार देने से दूध उत्पादन, स्वास्थ्य और समग्र उत्पादकता में सुधार होता है। पशुओं के आहार में हरे चारे, अनाज और अन्य पोषक तत्वों को शामिल करें, ताकि वे स्वस्थ रहें और अधिक दूध दें। गायों को संतुलित आहार देने से उनकी पोषण संबंधी जरूरतें पूरी होती हैं। इसमें प्रोटीन, ऊर्जा, विटामिन, खनिज और फाइबर शामिल होते हैं। आहार को पशु के जीवनचक्र, वजन और दूध उत्पादन के स्तर के अनुसार समायोजित करना चाहिए। हरे चारे जैसे कि घास, मक्का या अन्य पौधों का चारा गायों के आहार में शामिल करें। हरा चारा उच्च पोषण मूल्य प्रदान करता है और गायों के पाचन तंत्र के लिए फायदेमंद होता है। डेरी गायों को उच्च प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इसके लिए सोयाबीन का चारा, कपास के बीज, या अन्य प्रोटीन समृद्ध स्रोतों का उपयोग करें। गायों के आहार में खनिज और विटामिन पूरक के रूप में जोड़ें। ये उनके स्वास्थ्य और उत्पादकता के लिए आवश्यक हैं। पोषण विशेषज्ञ की सलाह लेकर गायों के आहार की योजना बनाएं। इससे गायों की पोषण संबंधी जरूरतें बेहतर तरीके से पूरी हो सकती हैं। गायों के आहार में विविधता बनाए रखें ताकि वे सभी आवश्यक पोषक तत्व प्राप्त कर सकें और उनके पाचन तंत्र को स्वस्थ रखा जा सके।

नियमित रूप से गायों की जांच करवाएं, ताकि रोगों का जल्द पता चल सके और उपचार किया जा सके। रोगों से बचाव के लिए गायों का समय-समय पर टीकाकरण करें और रोकथाम उपाय अपनाएं।

प्रजनन प्रबंधन

गायों के प्रजनन चक्र की निगरानी करें और सही समय पर गर्भाधान करें। इससे उच्च गुणवत्ता वाली संतानों का जन्म होता है। उच्च गुणवत्ता वाले सांडों के शुक्राणु का उपयोग करके कृत्रिम गर्भाधान करें ताकि उच्च गुणवत्ता वाले वंश का जन्म हो।

प्रशिक्षण और शिक्षा

फार्म के कर्मचारियों को आधुनिक डेरी प्रथाओं और पशुपालन तकनीकों के बारे में शिक्षित करें। इससे वे अधिक प्रभावी ढंग से काम कर सकते हैं।

आर्थिक प्रबंधन

वित्तीय रिकॉर्ड: फार्म के खर्च और आय के वित्तीय रिकॉर्ड को ध्यानपूर्वक प्रबंधित करें। इससे आर्थिक स्थिति का आकलन करना आसान होता है।

लागत नियंत्रण: खर्चों पर नजर रखें और जहां संभव हो, लागतों को नियंत्रित करें।

सामुदायिक नेटवर्किंग

अन्य डेरी किसान, पशु चिकित्सकों और पोषण विशेषज्ञों के साथ नेटवर्क बनाएं। इससे नए विचारों, अनुभवों और तकनीकों को साझा किया जा सकता है। ज्ञान और अनुभवों का आदान-प्रदान करके डेरी फार्म को और भी सफल बनाया जा सकता है।

पशुपालन प्रबंधन

पशुओं के आवास, चारे की आपूर्ति और अन्य प्रबंधन प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करें। इससे पशुओं का स्वास्थ्य और उत्पादकता दोनों में सुधार होगा। डेरी फार्म में गायों के प्रदर्शन को बेहतर बनाने के लिए प्रभावी प्रबंधन तकनीकें अपनाना आवश्यक है। ये तकनीकें न केवल उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाती हैं, बल्कि गायों के स्वास्थ्य और समग्र कल्याण में भी सुधार करती हैं। नीचे दिए गए बिंदुओं की विस्तार से व्याख्या की गई है।

डेरी फार्म के उत्पादन और उत्पादकता में सुधार से केवल किसानों को ही नहीं, बल्कि समग्र रूप से समाज को भी लाभ होता है। इससे उपभोक्ताओं को उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद मिलते हैं, जबकि किसानों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, जिससे ग्रामीण समुदायों में आर्थिक प्रगति होती है।

तिल की प्राकृतिक खेती

देवेश पाठक[1], **अमन सिंह**[2] और **भास्कर प्रताप सिंह**[3]

"तिल एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है, जिसे सीमित संसाधनों में उगाया जा सकता है। तिल विटामिन, खनिज और फाइबर का एक अच्छा स्रोत है। भारत में प्राचीनकाल से धार्मिक कार्यों पूजा, हवन आदि में इसका प्रयोग बहुतायत में किया है। भारत में तिल का उत्पादन क्रमशः उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात आदि प्रदेशों में सफलतापूर्वक किया जाता है। तिल खरीफ के मौसम में होने वाली ऐसी लाभकारी फसल है, जिसको गाय व अन्य पशु अपेक्षाकृत कम खाते हैं। तिल के बीज में लगभग 50 प्रतिशत तेल, 18-20 प्रतिशत प्रोटीन एवं 12-15 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट पाया जाता है। तिल में आवश्यक सूक्ष्म तत्व जैसे कैल्शियम 1.0 प्रतिशत, फॉस्फोरस 0.7 प्रतिशत मात्रा में उपलब्ध होते हैं।"

तिल की खेती के लिए हल्की रेतीली, दोमट मृदा उपयुक्त होती है। मृदा का पी-एच मान 5.5 से 7.5 होना चाहिए। भारी मृदा में तिल को जल निकास की विशेष व्यवस्था के साथ उगाया जा सकता है।

तिल का सफल उत्पादन करने हेतु विभिन्न क्रियाओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

[1]वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, कठौरा; [2]वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, मसौधा; [3]वैज्ञानिक, कृषि विज्ञान केंद्र, हैदरगढ़ (आ.न.दे.कृ. एवं प्रौ.वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या) उत्तर प्रदेश

बीजोपचार

प्राकृतिक खेती में बीज की बुआई से पूर्व शोधन किया जाता है। इसके लिए 100 कि.ग्रा. बीज का उपचार करने हेतु एक पात्र में 5 कि.ग्रा. देसी गाय का गोबर, 5 लीटर गौमूत्र, 250 ग्राम चूना, 20 लीटर पानी एवं मुट्ठी भर खेत की मृदा लेकर बीजामृत तैयार करते हैं। बीज को फर्श पर फैलाकर बीजामृत छिड़कें एवं दोनों हाथों से बीज को धीरे-धीरे मिलाएं। इसके बाद बीज को छाया में सुखाकर बुआई करें।

तिल की स्वस्थ उपज

बुआई

तिल की बुआई मुख्यतः खरीफ मौसम में की जाती है। इसकी बुआई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक करनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन तिल की बुआई 15 जनवरी से 28 फरवरी तक कर सकते हैं। बुआई करते

समय पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी., पौधों की दूरी 10 सें.मी. एवं बीजों को 3 सें.मी. गहराई पर बुआई करें।

खड़ी फसल में जीवामृत का छिड़काव

प्रथम छिड़काव

बुआई के 21 दिनों बाद 250 लीटर/हैक्टर पानी एवं 12.5 लीटर कपड़े से छना हुआ जीवामृत मिलाकर छिड़काव करें।

दूसरा छिड़काव

प्रथम छिड़काव के 21 दिनों बाद 500 लीटर/हैक्टर जल के साथ 50 लीटर जीवामृत मिलाकर छिड़काव करें।

तृतीय छिड़काव

दूसरे छिड़काव के 21 दिनों बाद 500 लीटर जल के साथ 12.5 लीटर खट्टी छाछ मिलाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

जल प्रबंधन

प्राकृतिक खेती के अनुसार पौधों की जड़ों को नमी की आवश्यकता होती है। इसके लिए तिल की बुआई कूड़ एवं नाली विधि से करनी चाहिए।

आच्छादन

भूमि की सतह को फसल और खरपतवारों के अवशेष या अन्य पौधों के अवशेष से ढकना चाहिए। इससे मृदा में सूक्ष्म जीव, उर्वराशक्ति एवं नमी संरक्षित रहती है।

खरपतवार प्रबंधन

प्राकृतिक खेती में रासायनिक खरपतवारनाशियों का उपयोग नहीं किया जाता है। फसल उत्पादन के लिए केवल खरपतवार एवं मुख्य फसल के बीच सूर्य के प्रकाश लेने की प्रतिस्पर्धा को रोकना है न की खरपतवारों को नष्ट करना। खरपतवारों को उखाड़कर या काटकर मृदा की सतह पर आच्छादन के रूप में फैला देना चाहिए।

रोग प्रबंधन

तिल की खेती में रोग प्रबंधन के लिए खट्टी छाछ 15-20 लीटर/हैक्टर 500 लीटर जल में मिलाकर फसल पर छिड़काव करें। यह कवकनाशक एवं विषाणुरोधक का काम करता है।

प्रक्षेत्र पर जीवामृत की तैयारी

पोषक तत्व प्रबंधन

प्राकृतिक खेती में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं किया जाता है। पोषक तत्व उपलब्ध करवाने हेतु जीवामृत एवं घन जीवामृत का उपयोग किया जाता है।

घन जीवामृत

250 कि.ग्रा. छनी हुई गोबर की खाद एवं 250 कि.ग्रा./हैक्टर सूखा घन जीवामृत मिलाकर खेत में डालने से या बुआई के समय खेत में डालने से अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। सूखे घन जीवामृत को उपयोग करते समय खेत में पर्याप्त नमी होना आवश्यक है। खेत में ठोस घन जीवामृत की गोलियों/टुकड़ों का उपयोग किया जा सकता है। इनको खड़ी फसल में मिट्टी में 3-4 इंच की गहराई पर रख देते हैं।

जीवामृत

खड़ी फसल में महीने में दो या एक बार उपलब्धता के अनुसार 500 लीटर/हैक्टर की दर से सिंचाई के साथ जीवामृत का उपयोग करना लाभकारी होता है।

सारणी: तिल की उन्नत किस्में

किस्म	पकने की अवधि	तेल की मात्रा	उपज (कि.ग्रा./हैक्टर)
जवाहर तिल-12 पी. के. डी. एस-12	82-85	48-52	700-750
आर. टी.-346	82-86	49-51	750-850
टी. के. जी.	80-85	48-50	600-700
डी.एस.एस.-9	85-90	48-50	600-650
जे. टी. एस 8	82-86	48-52	600-700
जे. टी.11 पी. के. डी. एस-11	82-85	46-50	650-700

कीट नियंत्रण

तिल में कीट नियंत्रण के लिए निम्न प्रबंधन किया जाता है।

नीमास्त्र रस

चूसने वाले कीट जैसे माहूं, बग, पत्ती फुदका आदि तथा छोटी सूंडी के लिए नीमास्त्र का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए 5-6 लीटर/हैक्टर नीमास्त्र मिश्रण को 250 लीटर जल में मिलाकर छिड़काव करें।

ब्रह्मास्त्र

इसका उपयोग फसलों के छेदक कीटों से बचाव करने के लिए किया जाता है। इसके 15-20 लीटर/हैक्टर मिश्रण को 250 लीटर जल में मिलाकर छिड़काव करें।

अग्निअस्त्र

तिल के कीट नियंत्रण के लिए अग्निअस्त्र का उपयोग 15-20 लीटर/हैक्टर मिश्रण को 250 लीटर जल में मिलाकर छिड़काव करें।

कटाई एवं भण्डारण

पौधों की पत्तियां पीली पड़ने लगे या झड़ना प्रारंभ हो जाये, तब कटाई करें। कटाई के उपरान्त फसल के गट्ठे बांधकर खेत में अथवा खलिहान में खड़े रखें। इसे 8 से 10 दिनों तक सुखाने के बाद लकड़ी के डंडों से पीटकर तिरपाल पर झड़ाई करें। बीज को साफ करें एवं धूप में अच्छी तरह सूखा लें। बीजों में जब 8 प्रतिशत नमी हो, तब भंडारित करें।

अप्रैल के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, अंजली पटेल, प्रवीण कुमार उपाध्याय, एस.एस. राठौर और **आदित्य सिंह**

"अप्रैल में कई ऐसी फसलें हैं, जिनका उत्पादन कर किसान आर्थिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। यह मुख्यत: रबी फसलों की कटाई एवं जायद फसलों की बुआई अथवा खरीफ फसलों के लिए भूमि की तैयारी का समय है। अप्रैल में मौसम में होने वाले बदलाव के कारण फसलों को खास देखभाल की जरूरत होती है। इस महीने अच्छी फसल पाने के लिए कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। भारत की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर आश्रित है। इसके साथ ही भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में भी कृषि का अहम् योगदान है। देश की अर्थव्यवस्था को और अधिक मजबूत करने एवं कृषि कार्यों में आने वाली असुविधाओं को दूर करने के लिए समय-समय पर योजनाओं का संचालन किया जा रहा है, ताकि किसान इन योजनाओं के माध्यम से अपनी समस्याओं का निराकरण कर सकें। किसान इन योजनाओं के माध्यम से अच्छी तरह से खेती कर अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति में भी सुधार कर सकते हैं।"

अप्रैल माह में तापमान में वृद्धि होने लगती है। इसके साथ ही रातें छोटी एवं दिन बड़े होने लगते हैं। इसके साथ ही रबी फसलों की कटाई, मड़ाई का कार्य भी शुरू हो जाता है। रबी की मुख्य फसलें जैसे-गेहूं, जौ, चना, मटर और मसूर की कटाई इस माह तक करके, अनाज को उचित नमी की अवस्था में टंकी, कोठी, बारदानों को अच्छी तरह से साफ करने के बाद नया अनाज उनमें भंडारित करते हैं।

सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

मौसम में भी अप्रत्याशित बदलाव आने लगते हैं, जैसे-तेज हवाओं का चलना, आंधी-तूफान आना और दक्षिणी क्षेत्र से असमय वर्षा होना। अत: इस समय मौसम के स्वभाव पर विशेष ध्यान देना चाहिए और मौसम संबंधी भविष्यवाणी से अवगत रहकर सही समय पर फसल कटाई संबंधी कार्यों को पूर्ण करना चाहिए। इसके साथ-साथ खाली खेतों में जायद मौसम के अन्तर्गत कृषि उत्पादन वृद्धि हेतु उपलब्ध संसाधनों का समुचित एवं सामयिक उपयोग आवश्यक है।

सिंचाई सुविधा संपन्न क्षेत्रों में जायद फसलें जैसे-सूरजमुखी, मूंगफली, मूंग, उड़द, बाजरा, मक्का, बेबीकॉर्न, गन्ना, चारे वाली फसलें (ज्वार, बाजरा, मक्का एवं लोबिया), मेंथा, सब्जी वाली फसलें (प्याज, लहसुन, तोरई, कद्दू, तरबूज, खरबूजा, खीरा, ककड़ी, लौकी, करेला, भिंडी, सूरन, अदरक, हल्दी, टमाटर, गाजर, मूली, अरबी, चौलाई, हरी मिर्च, लोबिया, धनियां) तथा हरी खाद की फसलों की बुआई शुरू कर देनी चाहिए। इसके लिए खेत को भलीभांति तैयार कर,

उपयुक्त नमी बनाये रखने के लिए आवश्यक सिंचाई प्रबंधन करना आवश्यक है। इसके साथ ही बीज, खाद एवं उर्वरक का समय पर प्रबंधन कर लेना चाहिए। इसके अलावा, पशुपालन और बागवानी से जुड़े कार्य भी इस महीने में प्रमुख रूप से किए जाते हैं। इस माह किये जाने वाले कृषि कार्यों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है:

गेहूं, जौ और अन्य फसलें

- **गेहूं:** गेहूं की कटाई से लेकर बेचने तक की अवधि में कई प्रकार के कार्य किए जाते हैं, जिनका अलग-अलग महत्व है। यदि खेत छोटे-छोटे टुकड़ों में बिखरे हुए हैं, तो गेहूं के एक बड़े हिस्से की कटाई को श्रमिकों द्वारा दरांती, हंसिये, रीपर या मोअर से किया जाता है, जिसमें सतह से 3-6 सें.मी. ऊपर से कटाई की जाती है। आजकल आसानी से कटाई के लिए रीपर का उपयोग बढ़ता जा रहा है। बड़े पैमाने पर खेती के लिए कम्बाइन प्रयोग में लाई जा रही है।
- फसल को पकने के तुरंत बाद काट लेना चाहिए। फसल के अधिक पकने पर कुछ प्रजातियों में दाने झड़ने लगते हैं अथवा काटने में देरी करने से चिड़ियों तथा चूहों से भी नुकसान हो सकता है। कभी-कभी काटने में देरी करने से गेहूं की गुणवत्ता पर भी खराब प्रभाव पड़ता है। पकने की अवस्था का अनुमान किसान अपने अनुभव के आधार पर लगा सकते हैं। अप्रैल के अंत तक प्राय: सभी किस्मों को काट लेना चाहिए। गेहूं में कुल उत्पादन का लगभग 8 प्रतिशत भाग कटाई उपरांत नष्ट होने की आशंका रहती है। इन हानियों को उचित तरीकों को अपनाकर कम किया जा सकता है।
- गेहूं की फसल इस महीने में पककर तैयार हो जाती है। जब दाने सुनहरे सख्त होने लगें तथा दानों में 18-20 प्रतिशत नमी हो, कटाई की सही अवस्था होती है। सुबह का समय कटाई के लिए ज्यादा उपयुक्त होता है। अगर कटाई हाथ से की जाती है, तो फसल के बंडलों को 3-4 दिनों तक खेत में छोड़ देना चाहिए। बड़े जोत वाली जगहों पर कम्बाइन हार्वेस्टर का प्रयोग करने से कटाई, मड़ाई तथा ओसाई एक साथ हो जाती है।
- भूसे को इकट्ठा करने के लिए भूसे बनाने की मशीन का उपयोग भी किया जा सकता है। परन्तु कम्बाइन हार्वेस्टर से कटाई करने के लिए दानो में 20 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। दानों में ज्यादा नमी रहने पर मड़ाई या गहाई ठीक से नहीं हो पाती है। उन्नत तकनीक से खेती करने पर सिंचित अवस्था में गेहूं की बौनी किस्मों से लगभग 50-60 क्विंटल

जौ

फसल को तब पका हुआ माना जाता है, जब अनाज में नमी की मात्रा 12.5 से 18 प्रतिशत के बीच होती है। अनाज में नमी की मात्रा कम है, तो बीजों की परत उतरने की आशंका रहती है। अगर अनाज बहुत गीला है, तो विशेष भंडारण स्थितियों की आवश्यकता होगी। आमतौर पर इस फसल को कंबाइन और थ्रेसर से काटा जाता है। अगर जौ की कटाई माल्ट के लिए की जानी है, तो विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है। भूसे से अलग होने के बाद, अनाज को 6-8 महीने तक ठंडी और सूखी जगहों पर रखा जा सकता है। हालांकि, भंडारण की आवश्यकताएं अनाज में नमी की मात्रा और उगाने के उद्देश्य पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, माल्ट बनाने के लिए 10.5 प्रतिशत और उससे कम नमी वाले जौ की कटाई करने से इसे 10 से 20 डिग्री सेल्सियस पर 18 महीने तक संग्रहित किया जा सकता है। उच्च नमी वाले माल्ट अनाजों (12.5 प्रतिशत और अधिक) का भंडारण जीवन 20 से 30 डिग्री सेल्सियस के तापमान पर 3 महीने तक होता है।

पूसा जवाहर संकर मक्का

उपज के अलावा 80-90 क्विंटल भूसा प्रति हैक्टर प्राप्त होता है, जबकि देसी लम्बी किस्मों से इसकी लगभग आधी उपज प्राप्त होती है। देसी किस्मों से असिंचित अवस्था में 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर उपज प्राप्त होती है। भंडारण हेतु दानों में 10-12 प्रतिशत से अधिक नमी नहीं होनी चाहिए। भंडारण के पूर्व कोठियों तथा कमरों को साफ कर लें और दीवारों एवं फर्श पर मैलाथियान 50 प्रतिशत के घोल को 3.0 लीटर प्रति 100 वर्गमीटर की दर से छिड़कें। अनाज को बुखारी, कोठियों या कमरे में रखने के बाद एल्युमिनियम फॉस्फाइड 3.0 ग्राम की दो गोली प्रति टन की दर से रखकर बंद कर देना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन बाजरा एवं मक्का

- **मृदाः** दोमट या बलुई दोमट मृदा बाजरा एवं मक्का के लिए अच्छी रहती है। भलिभांति समतल एवं जीवांश वाली मृदा में बाजरे की खेती करने से अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। खेत में जल निकास की सही व्यवस्था होनी चाहिए। ये फसलें ज्यादा पानी नहीं सहन कर सकती हैं।
- **बुआईः** बाजरा एवं मक्का की बुआई मार्च के प्रथम सप्ताह से अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। ये पर-परागित फसलें हैं इनके परागकण 46 डिग्री सेल्सियस तापमान पर भी जीवित रह सकते हैं। जहां तक बीज की मात्रा की बात है, तो बाजरा एवं मक्का के लिए क्रमशः 4-5 एवं 20-25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से सही रहता है। बुआई के समय पंक्तियों की आपसी दूरी क्रमशः 25 एवं 45-60 सें.मी. होनी चाहिए। बीजों को 2 सें.मी. से ज्यादा गहरा नहीं बोना चाहिए।
- **किस्मों का चयनः** बाजरे की संकर प्रजातियां जैसे-जी.एच.बी.-558 एवं 86, एम.-52 डी.एच.-86, आईसीजीएस-44, आईसीजीएस-1 तथा संकुल प्रजातियां जैसे-पूसा कम्पोजिट-383, आई.सी.टी.पी.-8203, राज.-171 एवं आई.सी.एम.वी.-221 प्रमुख हैं।
- ग्रीष्मकालीन मक्का की संकर प्रजातियां जैसे-पीएमएच-2, पीएमएच-7 (जेएच

ग्रीष्मकालीन गन्ना

- **बुआईः** ग्रीष्मकालीन गन्ने की बुआई उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा एवं उत्तराखंड में अप्रैल एवं मई में की जाती है। गेहूं की कटाई के बाद अप्रैल में भी गन्ना लगा सकते हैं। इसके लिए उपयुक्त किस्में सी.ओ.एच.-35 एवं सी.ओ.एच.-37 हैं। गन्ने की बुआई से पूर्व खेतों को अच्छी तरह से समतल कर लें। गन्ने की फसल खेत में 2-3 वर्षों तक रहती है। इस मौसम की गन्ने की फसल के लिए खेत को जुताई करके भलीभांति तैयार कर लें। बुआई के लिए लगभग 35,000-40,000 गन्ने के तीन आंख वाले टुकड़ों (लगभग 5-6 टन) की आवश्यकता होती है। 75-90 सें.मी. के पंक्ति से पंक्ति की दूरी पर 10-15 सें.मी. गहरा कूड़ डेल्टा हल से बनाकर बोया जाता है। गन्ना कटर प्लांटर द्वारा केवल 5 श्रमिकों की मदद से एक हैक्टर साथ ही एक दिन में 2 हैक्टर की बुआई कर सकते हैं। यह सामान्यतः 30-40 श्रमिकों द्वारा की जाती है। इसके साथ ही एक दिन में 2 हैक्टर की बुआई कर सकते हैं। बुआई से पूर्व गन्ने के सेट को कवकनाशी जैसे-कार्बेण्डाजिम 0.2 प्रतिशत से 15 मिनट तक उपचारित करने से स्मट रोग को रोका जा सकता है। दो आंखों वाली या तीन आंखों वाली पोरियों को 6 प्रतिशत पारायुक्त ऐमीसॉन या 0.25 प्रतिशत मैंकोजैब के 100 लीटर पानी के घोल में 4-5 मिनट तक डुबोकर लगाएं।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** गन्ने में 150-180 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पोटाश प्रयोग करना लाभप्रद होता है, किन्तु उर्वरक प्रबंधन मृदा परीक्षण के आधार पर ही करना चाहिए। बसंतकालीन गन्ना जो फरवरी में लगा है, में एक-तिहाई नाइट्रोजन की दूसरी किस्त 1 बोरा यूरिया अप्रैल में डाल दें एवं खेत में खाली स्थानों को पोरिया या नर्सरी में उगाए गए पौधों से भर दें।
- **सिंचाई एवं गुड़ाईः** पूर्व में लगाए हुए गन्ने में आवश्यकतानुसार फसल की मांग के अनुरूप सिंचाई एवं गुड़ाई करते रहें। जिन खेतों से गन्ने का बीज लेना है, उन खेतों में बीज लेने से 5-7 दिनों पूर्व सिंचाई करें।
- **अंतः सस्यनः** शीघ्र एवं कम अवधि में पकने वाली फसलों जैसे-मूंग, उड़द एवं लोबिया को गन्ने की दो पंक्तियों के बीच में बुआई कर सकते हैं। इससे प्रति इकाई क्षेत्र अतिरिक्त लाभ के अलावा मृदा की उर्वराशक्ति भी बढ़ा सकते हैं।

सारणी 1. बेबीकॉर्न की उन्नत प्रजातियां

प्रजातियां	उपज (क्विं./है.) छिलका सहित	छिलका सहित लम्बाई (सें.मी.)	बेबीकॉर्न की छिलकारहित उपज (क्विं./है.)
पूसा अगेती संकर मक्का-2	45.50	5.6	16.18
आजाद कमल	45	4 .5	15.20
प्रकाश	45.50	4 .5	16.18
एच.एम.-4	45.50	7.8	15.20
जी-5414	50.55	7.8	18.20

3956), पीएमएच-8, पीएमएच-10, विवेक 4 तथा संकुल प्रजातियां जैसे-पूसा कम्पोजिट 4, गौरव, आजाद उत्तम, सूर्या, किरण, तरुण, प्रताप मक्का 3 और बिरसा विकास मक्का 2 प्रमुख हैं।

- **जल प्रबंधन:** ग्रीष्मकालीन बाजरा एवं मक्का की फसल में 4-5 सिंचाइयां पर्याप्त होती हैं। 10-15 दिनों के अंतराल से सिंचाई करते रहना चाहिए। बाजरे में कल्ले निकलते समय एवं फूल आने पर तथा मक्के में घुटने तक ऊंचाई एवं सिल्क निकलते समय खेत में पर्याप्त मात्रा में नमी होनी चाहिए।
- **पोषक तत्व प्रबंधन:** उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण से प्राप्त संस्तुतियों के आधार पर करें। मृदा परीक्षण की सुविधा उपलब्ध न होने की दशा में संकर प्रजातियों के लिए 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश तथा संकुल प्रजातियों के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- मक्का की फसल में 120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश/हैक्टर प्रयोग करते हैं। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय प्रयोग करनी चाहिए। शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा को दो बार खड़ी फसल में टॉप ड्रेसिंग के रूप में बुआई के 25 से 30 दिनों बाद एवं शेष फूल आने के समय प्रयोग करें।
- **खरपतवार प्रबंधन:** ग्रीष्मकालीन मक्का की खेती में निराई-गुड़ाई का अधिक महत्व है। इसके साथ ही साथ निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण से ऑक्सीजन का संचार होता है। इससे जड़ें दूर तक फैलकर भोज्य पदार्थ को एकत्र कर पौधों को देती हैं। पहली निराई जमाव के 15-20 दिनों के बाद कर देनी चाहिए एवं दूसरी निराई 35-40 दिनों बाद करनी चाहिए। खरपतवारनाशी एट्राजीन (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) 1.5-2.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर का 600-800 लीटर पानी में घोलकर बुआई के दूसरे या तीसरे दिन अंकुरण से पूर्व प्रयोग करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। एलाक्लोर (50 ई.सी.) 4-5 लीटर बुआई के तुरन्त बाद अंकुरण के पूर्व 600-800 लीटर पानी में मिलाकर भी प्रयोग किया जा सकता है। यदि मक्का के बाद आलू की खेती किसान को करनी हो, तो एट्राजीन का प्रयोग न करें।
- **बेबीकॉर्न की खेती:** इसकी खेती के लिए पर्याप्त जीवांश वाली दोमट मृदा अच्छी होती है। भलीभांति समतल एवं अच्छी जल धारण क्षमता वाली मृदा इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है। पलेवा करने के बाद मिट्टी पलटने वाले हल से 10-12 सें.मी. गहरी एक जुताई तथा उसके बाद कल्टीवेटर या देसी हल से दो-तीन जुताइयां करके पाटा लगाकर खेत की तैयारी कर लेनी चाहिए।
- बेबीकॉर्न के बिल्कुल कच्चे भुट्टे बिक जाते हैं, जो होटलों में सब्जी, सूप, सलाद एवं अचार बनाने के काम आते हैं। यह फसल 50-60 दिनों में तैयार हो जाती है और निर्यात भी की जाती है। बेबीकॉर्न की संकर प्रकाश एवं कम्पोजिट केसरी किस्मों के 16 कि.ग्रा. बीज को एक फीट पंक्तियों में और आठ इंच पौधों में दूरी रखकर बोया जाता है। जायद हेतु बेबीकॉर्न की उन्नत प्रजातियों का चयन करें (सारणी-1)।

देसी चने की प्रजाति बीजीएम-10221

चना, मटर और मसूर

- दलहनी फसलों जैसे-चना, मटर, मसूर, खेसारी आदि की पत्तियां पीली या भूरी पड़ जाएं एवं फलियां और फली के अंदर दाना पीला पड़ जाए, तो समझ लें कि फसल पकने वाली है। फसलें मार्च के अंतिम सप्ताह या अप्रैल के प्रथम सप्ताह में पककर तैयार हो जाती है। जब तक फसल या पौधे में नमी हो, तब तक कटाई नहीं करनी चाहिए। यदि दाने में नमी की मात्रा अधिक हो, तो कटाई एवं मड़ाई तथा भंडारण के समय बीजों के क्षति होने तथा बीज की जमाव क्षमता भी कमाजेर होने की आशंका रहती है। कटाई के समय दाने में नमी की मात्रा 15 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। पके हुए दाने में नमी की मात्रा का पता बीज को दांतों से चबाकर भी लगाया जा सकता है। दांतों से बीज दबाकर तोड़ने पर कट की आवाज आए, तो समझ लें कि फसल पक गई है।
- फसलों का पकना वहां की जलवायु परिस्थिति जैसे-नमी, सूर्य की रोशनी, तापमान एवं आर्द्रता इत्यादि पर निर्भर करता है। अधिक समय तक फसल को सुखाने या खड़ी रखने पर नुकसान हो सकता है। जहां तक संभव हो दलहनी फसलों की कटाई सुबह के समय करनी चाहिए। इस समय फलियों के चटकने की आशंका कम रहती है।
- फसल को कटाई के बाद धूप में सूखाएं, ताकि वानस्पतिक भाग फलियों एवं दाने में नमी कम हो सके। खलिहान में 3-4 दिनों तक धूप में रखने के बाद जांच लें कि दाने में नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत से कम हो। मड़ाई या गहाई बैलों या ट्रैक्टर द्वारा की जा

सकती है, परन्तु थ्रेसर मशीन द्वारा गहाई करने से समय एवं श्रमिकों की बचत होती है। भूसा या कचरा अलग करने हेतु बिजली या ट्रैक्टरचलित विनोवर द्वारा दानों की सफाई अच्छी तरह से की जा सकती है।

- भंडारण पूर्व दानों को साफ कर 4-5 दिनों तक सुखाते हैं। इससे दानों में नमी की मात्रा 10-12 प्रतिशत तक सुनिश्चित हो जाती है। भंडारण दो तरीके से किया जा सकता है: वेयर हाउस या बोरों का इस्तेमाल करके, यदि लंबे समय तक भंडारण करना हो, तो बिन्स या साइलो सबसे बेहतर तरीका है। बोरों में भण्डारण करना एक सस्ता एवं सुविधाजनक तरीका है। इसमें घुन लगने एवं खराब होने की आशंका ज्यादा रहती है। खास किस्म के बोरे जो फाइबर या प्लास्टिक के बने हो, तो नुकसान कम होता है। भंडारण करते समय कीटों से बचाने के लिए एल्युमिनियम फॉस्फाइड की 3 गोलियां प्रति मीट्रिक टन की दर से प्रयोग करें, जिससे भण्डारण में कीटों से होने वाली हानि से बचाया जा सके।

ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द

- **बुआई:** ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द की बुआई 15 अप्रैल तक कर देनी चाहिए। बीज की बुआई सीडड्रिल या कुडों से पंक्तियों में की जानी चाहिए तथा बीजों को 4-5 सें.मी. गहराई में बोना चाहिए।
- **किस्मों का चयन:** ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द की अच्छी पैदावार तथा उत्तम गुणवत्तायुक्त उत्पादन लेने के लिए उपयुक्त प्रजाति का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण है इसीलिए पानी के साधन, फसलचक्र एवं बाजार की मांग की स्थिति को ध्यान में रखकर उपयुक्त प्रजातियों का चयन करें। ग्रीष्मकालीन मूंग की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा विशाल, पूसा 1431, पूसा 1371, पूसा 9531, पूसा रतना, पूसा 0672, फीले मोरना (केडीजी 123), आईपीएम 410-3 (शिखा), आईपीएम 205-7 (विराट), आईपीएम 512-1 (सूरिया), एसएमएल 1115, एमएच 318, एमएच 421, एमएसजे 118 (केशवानंद मूंग 2), जीएएम 5, गुजरात मूंग-7 (जीएम-7), पीकेवी एकेएम-4, पंत एम 9 (पीएम 09-11), सम्राट, मेहा, आर.एम.जी. 268, पंत मूंग 4, पंत मूंग 5, पंत मूंग 6, एस.एम.एल. 668, एस.एम.एल. 832, एच.यू.एम. 2, एच.यू.एम. 1, एच.यू.एम. 6, एच.यू. एम. 12, गंगा 8, आर.एम.जी. 492, एम.एल. 818, टी.एम.बी. 37, एच.यू. एम. 16, बसंती (एम.एच.125), आई.पी.एम. 02-14 आदि 65-80 दिनों में पककर तैयार हो जाती हैं। ग्रीष्मकालीन मूंग की औसत उपज 8.14 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त हो जाती है। ग्रीष्मकालीन उड़द की उन्नत प्रजातियां जैसे-पीडीयू 1 (बसंत बहार), आईपीयू 94-1 (उत्तरा), पंत उड़द 19, पंत उड़द 30, पंत उड़द 31, पंत उड़द 35, एल.यू. 391, मैश 479 (केयूजी 479), मुकुंदरा उड़द-2, नरेंद्र उड़द-1, शेखर 1, शेखर 2, आजाद उड़द 1, कोटा उड़द 3, कोटा उड़द 4, इंदिरा उड़द प्रथम, यूएच-04-06, आदि उगाई जा सकती है जो 65-80 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।

सारणी 2. मूंग/उड़द आधारित फसल प्रणाली

खरीफ	रबी	जायद
धान	गेहूं	मूंग/उड़द
मक्का	गेहूं	मूंग/उड़द
मक्का	तोरिया	मूंग/उड़द
अरहर	गेहूं	मूंग
अरहर + मूंग	गेहूं	मूंग
उड़द	सरसों	मूंग/उड़द
आलू	गेहूं	उड़द
उड़द	गेहूं	मूंग

ग्रीष्मकालीन मूंग की नई प्रजाति पूसा-1431

- **बीज शोधन एवं बीजोपचार:** मृदा एवं बीजजनित कई कवक एवं जीवाणुजनित रोग होते हैं, जो मृदा अंकुरण होते समय तथा अंकुरण होने के बाद बीजों को काफी क्षति पहुंचाते हैं। बीजों के अच्छे अंकुरण तथा स्वस्थ पौधों की पर्याप्त संख्या हेतु बीजों को कवकनाशी से बीज उपचार करने की सलाह दी जाती है। इसके लिये प्रति कि.ग्रा. बीजों को 2 से 2.5 ग्राम थीरम तथा 1 ग्राम कार्बेण्डाजीम से उपचार करने के बाद राइजोबियम कल्चर/टीका से उपज करना चाहिए। उपचार हेतु 500 मि.ली. स्वच्छ जल में 100 ग्राम गुड़ एवं 2 ग्राम गोंद को पानी में मिलाकर गर्म कर लेना चाहिए। इसके बाद इसे ठंडा करके एक पैकेट राइजोबियम कल्चर/टीका (10 कि.ग्रा. बीज) मिलाकर अच्छी तरह बीजों को उपचारित कर लेना चाहिए एवं उपचारित बीजों को छाया में ही सुखाना चाहिए। बुआई के समय बीज डालने से पहले सल्फर धूल का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इसी प्रकार फॉस्फेट घुलनशील बैक्टीरिया (पीएसबी) से बीजों का शोधन करना भी लाभदायक होता है।
- **फसल प्रणाली:** सघन खेती के लिये विभिन्न दलहनों की शीघ्र पकने वाली प्रजातियां विकसित की गयी हैं, जो मुख्य फसल प्रणालियों के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। सिंचित क्षेत्रों के अन्तर्गत मूंग एवं उड़द की विभिन्न परिपक्वता अवधि वाली, तापमान एवं प्रकाश के प्रति अतिसंवेदनशील,

विभिन्न पौध स्वरूप एवं अधिक उपज वाली प्रजातियों के विकास से इनको कई फसल प्रणालियों में स्थान मिला है। उत्तर भारत में मूंग एवं उड़द की कम अवधि वाली पीली चितेरी विषाणु रोग, अवरोधी प्रजातियों मध्य मार्च से जून के बीच उगाने से फसल प्रणाली को अधिक लाभ कमाने तथा टिकाऊ बनाने में सहायता मिलती है। मूंग एवं उड़द आधारित फसल प्रणालियां सारणी-2 में दर्शायी गयी है।

- **पोषक तत्व प्रबंधन:** सामान्यत: उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जाना चाहिए। इन फसलों के लिये 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश एवं 20 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूड़ों में देना चाहिए। जिंक की कमी वाले क्षेत्रों में 15-20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही 5.0 टन/हैक्टर की दर से गोबर की खाद का उपयोग करना चाहिए।
- **जल प्रबंधन:** इस समय की मूंग एवं उड़द की फसल लगभग दो से ढाई महीने में तैयार हो जाती है। इस कारण से सिंचाई की भी बहुत अधिक आवश्यकता नहीं होती है। सही मायने में ग्रीष्मकालीन मूंग एक बोनस फसल की तरह कार्य करती है। हालांकि ग्रीष्मकालीन मूंग एवं उड़द की फसल की अच्छी वृद्धि एवं विकास के लिये 3 से 4 सिंचाइयां की जा सकती हैं। अनावश्यक रूप से सिंचाई करने पर पौधों की वानस्पतिक वृद्धि ज्यादा हो जाती है, जिसका उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अत: सिंचाई आवश्यकतानुसार एवं हल्की करें।
- **खरपतवार प्रबंधन:** मूंग एवं उड़द की पिछले माह बोयी गयी फसल में 25-30 दिनों बाद पहली सिंचाई करें। बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिकर हती है। पहली सिंचाई के बाद निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार भी होता है, जो मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणुओं द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन

ग्रीष्मकालीन उड़द

ग्रीष्मकालीन सूरजमुखी

अप्रैल में सूरजमुखी की बुआई भी कर सकते हैं। वैसे तो मार्च के प्रथम पखवाड़े तक इसकी बुआई हो जाती है किन्तु गेहूं के बाद सूरजमुखी लेने पर अप्रैल में भी बुआई कर सकते हैं। सूरजमुखी की बी.एस.एच.-1, एल.एस.एच.-1, एल.एस.एच.-3, के.वी.एस.एच.-1, के.वी.एस.एच.-41 तथा संकुल किस्में जैसे-ई.सी.-68415, सह.-1, सह.-4, सी.ओ.-2, सी.ओ.-3, सी.ओ.-5, एस.एस.-56, गौसुफ-15 एवं मॉडर्न इत्यादि उन्नत संकर किस्में हैं। इसके लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज को पंक्ति से पंक्ति की दूरी 45-60 सें.मी. और पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सें.मी. में 4-5 सें.मी. की गहराई पर बुआई करें। ऊंचे पर्वतीय क्षेत्रों में अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक सूरजमुखी की ई.सी. 68415 प्रजाति की बुआई कर सकते हैं जो अच्छे जल निकास वाली गहरी दोमट मृदा तथा क्षारीय एवं अम्लीय स्तर को सहन कर सकती है बीज को 12 घंटे पानी में भिगोकर छाया में 3-4 घंटे सुखाकर बोने से जमाव शीघ्र होता है। बोने से पहले बीज को एप्रोन 35 एसडी की 6.0 ग्राम या कार्बेण्डाजिम की 2 ग्राम अथवा थीरम की 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार अवश्य करें। सूरजमुखी की बुआई के 15-20 दिनों बाद सिंचाई से पूर्व विरलीकरण (थीनिंग) किसान अवश्य कर दें और इसके बाद सिंचाई करें। रासायनिक खरपतवार नियंत्रण हेतु पेंडिमेथिलीन 30 प्रतिशत की 3.3 लीटर/हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के बाद एवं अंकुरण से पूर्व अर्थात बुआई के 3-4 दिनों के अन्दर छिड़काव करना चाहिए।

एकत्रित करने में सहायक होता है। चौड़ी पत्ती तथा घास वाले खरपतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिये एलाक्लोर की 4 लीटर या फ्लूक्लोरालिन (45 ई.सी.) नामक रसायन की 2 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पहले छिड़काव कर देना चाहिए। बुआई के 15-20 दिनों के अन्दर कसोले से निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।

चारा फसलें

- ग्रीष्मकाल में पशुओं के लिए चारे की कमी अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में एक आम समस्या है। इसके समाधान के लिए गर्मी के मौसम में अप्रैल में जहां सिंचाई की व्यवस्था है वहां पर हरे चारे की खेती कर सकते हैं। इस समय प्रमुख हरे चारे में मक्का, लोबिया, ज्वार आदि फसलों की उत्तम किस्मों को सुझाई गयी सस्य क्रियाओं को अपनाकर उगाना चाहिए।
- **मक्काः** इसकी खेती अच्छी जल निकास वाली दोमट या बलुई और हल्की काली मृदा में की जाती है। एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2-3 जुताइयां देसी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। मक्के की हरे चारे हेतु संकर प्रजातियां जैसे-संकर मक्का गंगा-2, गंगा-7, विजय कम्पोजिट, जे-1006, अफ्रीकन टॉल, प्रताप चारा-6 आदि प्रमुख हैं। बीजों को 2.5 ग्राम थीरम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। संकर तथा संकुल किस्मों में 120 कि.ग्रा. तथा देसी प्रजातियों में 80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है।
- **ज्वारः** ज्वार एक पौष्टिक चारा है, जो पशुओं को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करता है। ज्वार अपनी उच्च सूखा सहनशीलता के लिए जाना जाता है, जो इसे सीमित वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए एक मूल्यवान फसल बनाता है। गर्मियों की बुआई के लिए, सबसे अच्छा समय मध्य मार्च से मध्य अप्रैल तक है। ज्वार की प्रमुख प्रजातियां जैसे-पूसा चरी-23, पूसा हाइब्रिड चरी-109, पूसा चरी-615, पूसा चरी-6, पूसा चरी-9, पूसा शंकर-6, एस.एस.जी. 59-3 (मीठी सूडान), एम.पी.चरी, एस.एस. जी.-988-898, एस.एस.जी.-59-3, जे.सी. 69, सी.एस.एच.-20-एमजी, हरियाणा ज्वार-513, आदि प्रमुख हैं, जो इस समय लगायी जा सकती है। ज्वार की इन किस्मों से 30-60 टन/हैक्टर तक हरे चारे की प्राप्ति होती है। बहु-कटाई वाली किस्में जैसे मीठी सूडान, एम.पी. चरी, पूसा चरी 23, जवाहर चरी 60 से 69 टन/हैक्टर तक हरे चारे की पैदावार ली जा सकती है।

ग्रीष्मकालीन मूंगफली

- **भूमिः** मूंगफली की खेती के लिए दोमट, बलुई, बलुई दोमट या हल्की दोमट मृदा अच्छी रहती है। ग्रीष्मकालीन मूंगफली की बुआई आलू, मटर, सब्जी मटर तथा राई की कटाई के बाद खाली खेतों में सफलतापूर्वक की जा सकती है।
- **किस्मों का चयनः** ग्रीष्मकालीन मूंगफली की उन्नत प्रजातियां जैसे-अवतार (आईसीजीवी-93468), टीजी-26, टीजी-37, डी एच-86 एवं एम 522 किस्में सिंचित अवस्था में अप्रैल के अंतिम सप्ताह में गेहूं की कटाई के तुरंत बाद बोयी जा सकती है। ये अगस्त या सितम्बर के अन्त तक तैयार हो जाती हैं।

- **बीजोपचारः** बोने से पूर्व बीजों को थीरम 2.0 ग्राम और 1.0 ग्राम कार्बेण्डाजिम 50 प्रतिशत धूल के मिश्रण को 2.0 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज अथवा थायोफिनेट मिथाइल 1.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज अथवा ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम+1 ग्राम कार्बेक्सिन प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से शोधित करना चाहिये। इस शोधन के 5-6 घन्टे बाद बुआई पूर्व बीज को मूंगफली के विशिष्ट राइजोबियम कल्चर से उपचारित करें। एक पैकेट 10 कि.ग्रा. बीज के लिए पर्याप्त होता है। कल्चर को बीज में मिलाने के लिए आधा लीटर पानी में 50 ग्राम गुड़ घोल लें, फिर इस घोल में 250 ग्राम राइजोबियम कल्चर मिलाएं, जिससे बीज के ऊपर एक हल्की परत बन जाये। इन बीजों को छाया में 2-3 घन्टे सुखाकर बुआई सुबह के समय या शाम को 4 बजे के बाद करें। तेज धूप में कल्चर के जीवाणु के मरने की आशंका रहती है।
- **पोषक तत्व प्रबंधनः** मूंगफली की फसल में उर्वरक का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। यदि राई एवं मटर की खेती के बाद ग्रीष्मकालीन मूंगफली की खेती की जा रही है, तो बुआई से पूर्व 100 क्विंटल/हैक्टर की दर से गोबर की खाद डालनी चाहिए। आलू तथा सब्जी मटर की फसलों में यदि गोबर की खाद प्रयोग की गयी है, तो गोबर की खाद डालने की आवश्यकता नहीं है। राई तथा मटर की खेती के बाद उगाई जा रही मूंगफली में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 40 कि.ग्रा. पोटाश तथा 200 कि.ग्रा. जिप्सम की माह प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करनी चाहिए। ग्रीष्मकालीन मूंगफली में नाइट्रोजन की अधिक मात्रा न डालें अन्यथा यह मूंगफली के पकने की अवधि बढ़ा देगी। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश की पूरी मात्रा को एवं जिप्सम की आधी मात्रा कूड़ों में नाई अथवा चोंगे द्वारा बुआई के समय बीज से लगभग 2-3 सें.मी. गहरा डालना चाहिए। जिप्सम की शेष आधी मात्रा का मूंगफली में फूल निकलते तथा पेग (खूंटी) बनते समय टॉप ड्रेसिंग करके प्रयोग करना चाहिए।

हरे चारे के लिए, साइनाइड विषाक्तता के जोखिम को कम करने के लिए 50 प्रतिशत फूल आने पर कटाई करें। जहां तक हो सके किसानों को ज्वार एवं मक्का की मिश्रित फसल ग्वार और लोबिया के साथ उगानी चाहिए। इससे चारे की पौष्टिकता एवं स्वादिष्टता बढ़ती है। इसके साथ ही मृदा की उर्वराशक्ति में भी सुधार होता है। 50-60 कि.ग्रा./हैक्टर बीज शुद्ध फसल की बुआई के लिए पर्याप्त होता है। ज्वार या मक्का के साथ मिलाकर बुआई के लिए 15-20 कि.ग्रा. बीज प्रयोग करना चाहिए।

- **बाजरा:** हरे चारे के लिए संकर बाजरा या कम्पोजिट बाजरा तथा जायंट बाजरा, राज 171, एल.-72 एवं एल.-74 आदि प्रमुख प्रजातियां हैं। 8-10 कि.ग्रा./हैक्टर बीज शुद्ध फसल की बुआई के लिए पर्याप्त होता है। मिश्रित फसल में बाजरा तथा लोबिया 2:1 अनुपात (2 पंक्ति बाजरा तथा 1 पंक्ति लोबिया) में बुआई के लिए 6-7 कि.ग्रा. बाजरा तथा 12-15 कि.ग्रा. लोबिया के बीज की आवश्यकता होती है। 2.5 ग्राम थीरम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचारित करें। बाजरा के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है।
- **बरसीम:** बरसीम में 10-12 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई एवं कटाई करते रहें। यदि बरसीम की फसल बीज उत्पादन के लिए उगाई गयी है तो मार्च महीने के बाद कटाई नहीं करनी चाहिए। फूल आ जाने पर बीज वाली फसल में सिंचाई नहीं करनी चाहिए। यानी अप्रैल के प्रथम सप्ताह के बाद सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। 10-15 मई तक फसल पककर तैयार हो जाती है।
- **लोबिया:** चारे के लिए लोबिया की प्रमुख प्रजातियां बुन्देल लोबिया, सी-20, सी-30-558, सीओ.-5, ई. सी.-4216, रशियन जायंट, एचएफसी 42-1, यूपीसी-5286, यूपीसी-5287, यूपीसी-287, एनपी-3 इत्यादि हैं। अच्छी प्रकार खेत तैयार कर इसकी बुआई 40 कि.ग्रा. बीज/हैक्टर की दर से करते हैं। बुआई के लिए पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25-30 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 15 सें.मी. रखनी चाहिए। चारे हेतु लोबिया की कटाई बुआई के 50-55 दिनों बाद करते हैं। जहां दीमक की समस्या ज्यादा हो वहां अंतिम जुताई पर क्विनॉलफॉस (1.5 प्रतिशत) की 25 कि.ग्रा. मात्रा का प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए।

हरे चारे हेतु मक्का की उन्नत प्रजाति

लोबिया

हरे चारे हेतु ज्वार

हरी खाद वाली फसलें

- अप्रैल में किसानों द्वारा भूमि की उपजाऊ क्षमता को बढ़ाने के लिए हरी खाद वाली फसलों की बुआई की जाती है। हरी खाद की फसलों में ढेंचा को भी शामिल किया जाता है। रबी की फसलों की कटाई के बाद और खरीफ की फसलों की रोपाई से पहले खाली खेत में लोबिया, मूंग, ढैंचा आदि की खेती करें। इनकी बुआई का कार्य अप्रैल के अंत तक कर देना चाहिए। खरीफ की फसलों की बुआई से कुछ दिनों पहले हरी खाद वाली फसलों की जुताई कर उन्हें खेत में अच्छी तरह मिला दें। इससे मिट्टी में कई

हरे चारे हेतु लोबिया

सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी भी पूरी हो जाती है।

मृदा परीक्षण

- उच्च गुणवत्ता वाली फसल प्राप्त करने के लिए 3 वर्ष में एक बार मृदा परीक्षण करवाना आवश्यक है, ताकि मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर, जिंक, लोहा, तांबा, मैंग्नीज एवं अन्य) की मात्रा और फसलों में कौन सी खाद कब एवं कितनी मात्रा में डालनी चाहिए। रबी फसल की कटाई के बाद जब खेत खाली हो जाए, तो किसान अपने खेतों से मृदा नमूने इकट्ठे करें। इसके बाद मृदा के नमूने लेकर अपने नजदीक की मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में मृदा के नमूनों की जांच करवाएं तथा प्रयोगशाला के प्रभारी से नमूनों की जांच के उपरान्त मृदा स्वास्थ्य कार्ड अवश्य प्राप्त करें, ताकि आगामी खरीफ की फसल में मृदा स्वास्थ्य के आधार पर खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग किया जा सके। इसके साथ ही मृदा की क्षारीयता, लवणता, अम्लीयता आदि का भी सुधार किया जा सकता है।

सूरन

सब्जी वाली फसलें

- **प्याज एवं लहसुनः** तैयार हो चुके प्याज एवं लहसुन की खुदाई माह के अन्त में करें। खोदने के बाद फसल को तीन दिनों तक खेत में ही पड़ा रहने दें। तीन दिनों बाद प्याज एवं लहसुन को छाया में सुखाएं और फिर सही तरीके से भंडारण करें। खुदाई के 10 से 12 दिनों पहले सिंचाई बंद कर दें।

- **सूरन, अदरक एवं हल्दीः** इन फसलों की बुआई इस माह में प्रारम्भ कर दें। सूरन की बुआई के लिए 75 क्विंटल बीज प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें। गजेन्द्र और श्रीपद्म इसकी लोकप्रिय किस्में हैं। बुआई पूर्व सूरन के बीज को 2 प्रतिशत तुतियां प्रति नीला थोथा या 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन से उपचारित करें। अदरक की बुआई के लिए 18 क्विंटल बीज प्रति हैक्टर 30-40 सें.मी. फासले पर क्यारी बनाकर

मिर्च

हरी मिर्च में रोपाई के 25-30 दिनों बाद प्रति हैक्टर 35-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की पहली टॉप ड्रेसिंग एवं रोपाई के 45 दिनों बाद इतनी ही यूरिया की दूसरी टॉप ड्रेसिंग करें। फसल की निराई-गुड़ाई करें तथा उचित समय पर सिंचाई कर दें।

भिंडी

भिंडी की उन्नत प्रजातियों में आजाद भिंडी 1, आजाद भिंडी 2, आजाद भिंडी 3, आजाद भिंडी 4, परभनी क्रांति, वर्षा उपहार, पूसा ए 4, पूसा ए 5, अर्का अनामिका एवं अर्का अभय प्रमुख हैं। भिंडी की फसल में 35-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रेसिंग बुआई के 30 दिनों बाद एवं शेष एक तिहाई मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग बुआई के 45-50 दिनों बाद करें। फूल एवं फल आने की स्थिति में भिंडी में तनाबेधक और फलबेधक कीट लगते हैं। इसके लिए कार्बोसल्फॉन 25 ई.सी. 1.5 लीटर 800-1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर प्रत्येक 10 से 15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए। छिड़काव से पूर्व भिंडी की तुड़ाई कर लेनी चाहिए। इससे रसायनों का प्रभाव उपभोक्ताओं पर भी पड़ें। साथ ही भिंडी में येलोवेन मोजैक यानि पीला रोग का नियंत्रण आवश्यक है। इससे फल, पत्तियां और पौधे पीले पड़ जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु रोगरहित प्रजातियों का प्रयोग करना चाहिए या मैलाथियान 50 ई.सी. के 1.0 लीटर को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से प्रत्येक 10 से 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए।

20 सें.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर करें एवं हल्दी के लिए 15-20 क्विंटल बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बुआई से पूर्व हल्दी एवं अदरक के बीजों को 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के घोल से उपचारित कर लें। हल्दी की प्रमुख प्रजातियां दुग्गीराला लाल, आईआईएसआर-केदारम, आईआईएसआर-सुदर्शन, आईआईएसआर-सुगुना, मेघा, नरेंद्र हल्दी-(एनडीएच-18), प्रतिभा, राजेंद्र सोनाली, राजेंद्र सोनिया, रोमा, शोभासूरन इत्यादि हैं। अदरक के लिए अश्वथी, अथिरा, हिमगिरि, आईआईएसआर राजथा, आईआईएसआर-महिमा, आईआईएसआर-वरदा, कार्तिका, मारन, रियो-डी-जेनेरियो, सुप्रभा, सुरुचि, नादिया आदि प्रमुख किस्में हैं। अदरक एवं हल्दी की बुआई करने के बाद खेत को सूखी पुआल अथवा सूखी पत्तियों की पलवार से ढक दें। इससे खेत में खरपतवार का जमाव नहीं होता है। नमी संरक्षित रहने से फसल के जमाव में भी वृद्धि होगी तथा साथ ही इनके सड़ने से खेत में जीवांश या कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में भी बढ़ोतरी होती है।

- **बैंगन:** वर्षाकालीन बैंगन की फसल के लिए नर्सरी में बीजों की बुआई इस माह में कर सकते हैं। लो टनल पॉलीहाउस से बैंगन की अच्छी गुणवत्ता की पौध तैयार कर सकते हैं। बैंगन की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा हाइब्रिड-5, पूसा हाइब्रिड-9, विजय हाइब्रिड, पूसा पर्पिल लौंग, पूसा क्लस्टर, पूसा क्रान्ति, पंजाब जामुनी गोला, नरेन्द्र बागन-1, आजाद क्रान्ति, पन्त ऋतुराज, पन्त सम्राट, टी-3 आदि प्रमुख हैं। ग्रीष्मकालीन बैगन की नर्सरी यदि तैयार हो, तो उसकी रोपाई 75-90×60 सें.मी. की दूरी पर करें। जहां तक सम्भव हो, रोपाई शाम के समय करें तथा रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई कर दें। बैंगन में रोपाई के 30 दिनों बाद प्रति हैक्टर 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की पहली टॉप ड्रेसिंग एवं इतनी ही मात्रा की दूसरी टॉप ड्रेसिंग रोपाई के 45-50 दिनों बाद कर दें। बैगन में तना और फलीबेधक कीटों से बचाव के लिए कर्बोसल्फॉन 25 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल कर प्रत्येक 10-15 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करते रहना चाहिए या नीमगिरी 4 प्रतिशत का छिड़काव 10 दिनों के अन्तराल पर करने से अच्छा परिणाम मिलता है।

बैंगन

- **आलू:** अधिक ऊंचाई वाले पहाड़ी

टमाटर

टमाटर की फसल में आवश्यकतानुसार सिंचाई एवं गुड़ाई करते रहें। टमाटर की फसल में बहुत से रोग और कीट लगते हैं जैसे कि अर्धगलन, डेंपिंग ऑफ जिसमें पौधे गलने लगते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिए बुआई से पहले बीजों को उपचारित कर लेना चाहिए। इसके ही इंडोफिल एम-45 की 2 ग्राम मात्रा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। मोजैक एवं विषाणु रोग में पत्तियां सिकुड़ जाती हैं और पौधे की वृद्धि रुक जाती है। नियंत्रण हेतु सिकुड़ी पत्तियों को उखाड़कर जला देना चाहिए। फसल पर 2 ग्राम मोनोक्रोटोफॉस का छिड़काव करते रहना चाहिए, जिससे कि यह रोग अधिक न फैले तथा पैदावार अच्छी मिल सके। पत्ती, तना एवं फलबेधक कीट की रोकथाम के लिए मैलाथियॉन 50 ई.सी. की 1-1.25 लीटर दवा 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए। ध्यान रहे कि फलों की तुड़ाई छिड़काव के 4-5 दिनों बाद करें।

आलू

क्षेत्रों में आलू अप्रैल के पहले पखवाड़े में लगा सकते हैं। इसके लिए झुलसा रोगरोधक कुफरी ज्योति प्रजाति का बीज लें। अच्छे जल निकास वाली भूमि में बुआई के लिए ढलान के विपरीत 10 इंच दूरी पर नालियां बनाएं तथा 10 टन गोबर की खाद, 1 बोरा यूरिया, 5 बोरे सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 1 बोरा पोटेशियम सल्फेट डालकर मिट्टी से ढक दें। आलू के बीज के मध्यम आकार के 10-12 क्विंटल 2-3 आंख वाले टुकड़ों को 0.25 प्रतिशत एमिसान-6 के घोल में 6 घंटे तक डुबोकर 8-10 इंच दूरी पर लगाकर मिट्टी से ढक दें। दीमक, कटुआ एवं सफेद सूंडी के नियंत्रण के लिए बुआई के समय 1 लीटर क्लोरोपायरीफॉस 35 ई.सी. को 10 कि.ग्रा. रेत में मिलाकर छिड़काव कर दें।

- **फूलगोभी, गाजर एवं मूली:** फूलगोभी, गाजर एवं मूली की बीज वाली फसल कटाई हेतु तैयार हो गई हो, तो कटाई का काम करें। कटाई के बाद फसल सुखाकर बीज निकाले। बीजों को अच्छी तरह सुखाने के बाद पैकिंग कर के भंडारण करें।
- **अरबी:** अरबी की अगेती प्रजातियां लगाने का विचार यदि किसान बना रहें हो तो इसी महीने बुआई करें। इसकी लोकप्रिय किस्में को-1, पंचमुखी, सातमुखी (कोव्वुर), श्री पल्लवी, श्री किरण और श्री रश्मी हैं।
- **चौलाई:** चौलाई की फसल अप्रैल में लग सकती है। इसके लिए पूसा कीर्ति एवं पूसा किरण 500-600 कि.ग्रा. पैदावार देती है। 700 ग्राम बीज को पंक्तियों में 6 इंच और पौधों में एक इंच दूरी पर आधी इंच से गहरा न लगाएं। बुआई के समय 10 टन कम्पोस्ट, आधा बोरा यूरिया और 2.7 बोरा सिंगल सुपर फॉस्फेट डालें।

खीरा

- नियंत्रित स्थिति में ग्रीनहाउस में खीरे की वर्षभर पौध तैयार की जा सकती है। गर्मी के मौसम में इस विधि से पौध 15-18 दिनों में रोपाई योग्य हो जाती है। अंकुरण के तुरन्त बाद उनको पॉलीहाउस में फैला दिया जाना चाहिये। इस प्रकार पौध में जड़ों का विकास बहुत अच्छा होता है तथा जड़ें माध्यम के चारों ओर लिपट जाती हैं। इससे उन्हें ट्रे से निकालने पर जड़ों को कोई नुकसान भी नहीं होता है। बेल वाली सब्जियां जड़ों में कोई नुकसान सहन नहीं कर सकती हैं। अतः उनकी पौध तैयार करने का यह एक उपयुक्त उपाय एवं साधन है।

- खीरे के पौधों को एक प्लास्टिक की रस्सी के सहारे लपेटकर ऊपर की ओर चढ़ाया जाता है। इस प्रक्रिया से प्लास्टिक की रस्सियों को एक सिरे को पौधों के आधार से तथा दूसरे सिरे को ग्रीनहाउस में क्यारियों के ऊपर 9-10 फीट ऊंचाई पर बंधे लोहे के तारों पर बांध देते हैं। अन्त में जब पौधा उस तार के बराबर जिस तार पर रस्सी का दूसरा सिरा बंधा होता है, तो पौधों को नीचे की ओर चलने दिया जाता हैं। इसके साथ-साथ विभिन्न दिशाओं से निकली शाखाओं की निरन्तर काट-छांट करनी चाहिये। मोनोशियस किस्मों में मादा फूल मुख्य शाखा से निकली द्वितीय शाखाओं पर ही आते हैं अतः उनकी कटाई नहीं की जाती है अन्यथा उपज में भारी कमी होती है। कटाई-छंटाई करते समय इस बात का अवश्य ध्यान रखे कि हमने किस किस्म को उगाया है।
- पौधों की उर्वरक एवं जल की मात्रा मौसम एवं जलवायु पर निर्भर करती है। आमतौर पर पानी 2.0 से 2.5 घन मीटर प्रति 1000 वर्ग मीटर की दर से गर्मी में 2 से 3 दिनों के अन्तराल पर दिया जाता है। गर्मी में फसल में जल की मात्रा फल आने की अवस्था में 3.0 से 4.0 घन मीटर तक बढ़ा दी जाती है तथा उर्वरक पानी के साथ मिलाकर ड्रिप सिंचाई प्रणाली द्वारा दिये जाते हैं। नाइट्रोजन 80-100 पी.पी.एम., फॉस्फोरस 60-70 पी.पी.एम. तथा पोटाश 100-120 पी.पी.एम. तक दिये जाते हैं। इनकी मात्रा को फसल की अवस्था, भूमि के प्रकार एवं मौसम के अनुसार घटाया एवं बढ़ाया जा सकता है।
- ग्रीष्मकालीन फसल की अवधि 2.5 से 3.0 माह तक होती है। इस प्रकार के खीरे को 8 से 10 सें.मी. लम्बाई एवं कम मोटाई में तोड़कर ग्रेडिंग करके उच्च बाजार में अधिक भाव पर बेचा जा सकता है। इस प्रकार की किस्मों को बहुत कम लागत वाले ग्रीनहाउस में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

धनिया

- धनिया की खेती हरी पत्तियों के प्रयोग हेतु लगभग पूरे वर्ष की जाती है। धनिया की खेती हेतु दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है एवं अच्छे जीवांशयुक्त भारी मृदा में भी उगाई जा सकती है, लेकिन जल निकास होना अति आवश्यक है।
- धनिया की उन्नत प्रजातियां जैसे-पूसा सेलेक्शन 360, आर.सी. 1, यू.डी. 20, यू.डी. 21, पंत हरितमा, साधना, स्वाती, डी.एच. 5, सी.जी. 1, सी.जी. 2, सिंधु, सी.ओ. 1 एवं आर.सी.आर. 446 आदि प्रमुख हैं।
- बीज की मात्रा बुआई एवं सिंचाई की दशा पर निर्भर करती है। सिंचित दशा में बीज 12-15 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर तथा असिंचित दशा में 25-30 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की आवश्यकता पड़ती है। बीज को 3 ग्राम थीरम या 2 ग्राम बाविस्टीन से प्रति कि.ग्रा. की दर से बुआई करने से पहले शोधित कर लेना चाहिए। बीज को 12 घंटे पानी में भिगोने के बाद बुआई करनी चाहिए।
- उर्वरकों का प्रयोग मृदा पोषक तत्व परीक्षण के अनुसार करना चाहिए। जब खेत की अंतिम जुताई हो जाए तो 10-12 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही नाइट्रोजन 60 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 40 कि.ग्रा., तथा पोटाश 40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर प्रयोग करना चाहिए।

लोबिया

- यह गर्म जलवायु और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों की फसल है, जिसके लिए उपयुक्त तापमान 20 से 30 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है। लोबिया के अधिकतम उत्पादन के लिए दिन का तापमान 27 डिग्री सेल्सियस और रात का तापमान 22 डिग्री सेल्सियस रहता है। लोबिया की खेती लगभग सभी प्रकार की मृदा पर की जा सकती है, हालांकि दोमट या बलुई दोमट मृदा सबसे अच्छी मानी जाती है। इसके लिए मृदा का पी-एच मान उदासीन होना चाहिए। अच्छी जल निकासी वाली मृदा और भरपूर मात्रा में कार्बनिक पदार्थ इसके लिए सबसे उपयुक्त होते हैं।
- लोबिया की उन्नत प्रजातियों में पूसा धारणी, पूसा फाल्गुनी, पंत लोबिया-1, पंत लोबिया-2, पंत लोबिया-3, पंत लोबिया-4, पंत लोबिया-5, स्वर्ण हरिता, स्वर्ण सुफला, काशी कंचन, काशी निधि, जीसी 6, जीडीवीसी-2 आदि प्रमुख हैं, जो इस समय लगायी जा सकती है।
- उर्वरकों का प्रयोग मृदा पोषक तत्व परीक्षण के अनुसार करना चाहिए। जब खेत की अंतिम जुताई हो जाए तो 5-10 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हैक्टर डालना चाहिए। 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 50-60 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

बागवानी फसलें

- आम, अमरूद, पपीता, अंगूर, नीबू एवं बेर उत्पादन में सिंचाई पर ध्यान देना अतिआवश्यक है। जब पौधे नये हों जाम गर्मियों में इन फसलों में 7-8 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए, लेकिन बड़े होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए।

आम

- इस माह आम के बागों में एक वर्ष के वृक्ष के लिए 50 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस और 50 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें, जो क्रमशः बढ़ाकर 10 वर्ष या उससे अधिक आयु के पौधों के लिए प्रति वृक्ष 500 ग्राम नाइट्रोजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस और 500 ग्राम पोटाश देना चाहिए।
- आम के गुच्छा रोग या मालफारमेशन से ग्रस्त बौर की तुड़ाई कर दें।
- आम के फलों को गिरने से बचाने के लिए यूरिया के 2 प्रतिशत घोल या नेफ्थलीन एसिटिक एसिड 20 मि.ग्रा./लीटर या प्लेनोफिक्स 5 मि.ली. प्रति 10 लीटर पानी में घोलकर पेड़ पर छिड़काव करें। पहला छिड़काव फल बनने पर तथा दूसरा छिड़काव उसके 15 दिनों के अन्तर पर करें।

आम

- आम में ऊतक क्षय रोग के नियंत्रण के लिए 10 ग्राम/लीटर (1 प्रतिशत) बोरेक्स का छिड़काव करें।
- मिलीबग नई कोपलों, फूलों एवं फलों का रस चूसकर काफी नुकसान करती है। नियंत्रण के लिए 700 मि.ली. मिथाइल पैराथियॉन 70 ई.सी. को 700 लीटर पानी में घोलकर छिड़के तथा नीचे गिरी या पेड़ों पर चढ़ रहे कीटों को इकट्ठा करके जला दें और घास साफ रखें।
- यदि तेला (हॉपर) फूल पर नजर आये तो 700 मि.ली. मैलाथियॉन 70 ई.सी. 700 लीटर पानी में छिड़कें।
- आम में फुदका कीट से बचाव के लिए इमिडाक्लोरोपिड 0.3 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर प्रथम छिड़काव फूल खिलने से पहले करते हैं। कार्बरिल 4 ग्राम/लीटर का दूसरा छिड़काव फल

अमरूद

- अप्रैल में फूलों को तोड़ दें, ताकि फल मक्खी फूलों में अण्डे न दें पाये, जिससे फल सड़ जाते हैं। अमरूद की सिर्फ शरदकालीन फसल ही लेनी चाहिए।

- अमरूद में उकठा तथा काला वर्ण फल गलन या टहनी मार रोग नियंत्रण के लिए खेत साफ-सुथरा रखना चाहिए।
- अधिक सिंचाई नहीं करनी चाहिए एवं जैविक खादों का प्रयोग करना चाहिए। रोगग्रस्त डालियों को काटकर 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के घोल का छिड़काव दो या तीन बार 15 दिनों के अन्तराल पर करना चाहिए।

नीबू

- नीबू में एक वर्ष के पौधे के लिए दो कि.ग्रा. कम्पोस्ट और 70 ग्राम यूरिया प्रति पौधा दें।
- अप्रैल में नीबू का सिल्ला, लीफ माइनर और सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए 300 मि.ली. मैलाथियॉन 70 ई.सी. को 700 लीटर पानी में घोलकर छिड़कें।
- तने एवं फलों का गलन रोग के लिए बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।
- जस्ते की कमी के लिए तीन कि.ग्रा. जिंक सल्फेट को 1.7 कि.ग्रा. बुझा हुआ चूना के साथ 500 लीटर में घोलकर छिड़कें।

- नीबूवर्गीय पौधों में सूक्ष्म तत्वों का छिड़काव करें। फलों को फटने से बचाने के लिए 100 मि.ग्रा. जिब्रेलिक एसिड प्रति 10 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मटर के दाने के बराबर हो जाये, तब करना चाहिए।

- आम की डासी मक्खी के नियंत्रण के लिए मिथाइल यूजीनाल ट्रैप का प्रयोग करना चहिये।

पपीता

- अप्रैल में पपीते की नर्सरी तैयार करने के लिए उपयुक्त है। पपीते के एक हैक्टर क्षेत्र के लिए नर्सरी तैयार करने हेतु 70 वर्ग मीटर में 250-300 ग्राम बीज को लगाएं। उन्नत किस्मों में सनराइज, हनीड्यू, पूसा डिलीशियस, पूसा ड्वार्फ एवं पूसा जांयट हैं। एक नर्सरी में एक क्विंटल खाद मिलाकर क्यारी तैयार करें और बीजों को कैप्टॉन से 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। उपचारित बीजों को जमीन की सतह से 3 से 5 सें.मी. ऊंची क्यारियों में बोएं। बीजों को लगभग 10 सें.मी. की दूरी और 1 सें.मी. की गहराई पर बोएं।
- पपीता की रोपाई यदि मई में की गयी है, तो अगले वर्ष अप्रैल में फल आने लगते हैं।
- पपीता के लिए सिंचाई का उचित प्रबंधन होना आवश्यक है। गर्मियों में 6-7 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई का पानी पौधे के सीधे संपर्क में नहीं आना चाहिए।
- पपीते में मोजैक, लीफ कर्ल, रिंगस्पॉट, जड़ एवं तना सड़न, एंथ्रोक्नोज एवं कली तथा पुष्प वृंत का सड़ना आदि रोग लगते हैं। इनके नियंत्रण के लिए वृक्षों पर सड़न-गलन को निकालकर बोर्डो मिश्रण 5:5:20 के अनुपात से छिड़काव करना चाहिए। इसके साथ ही डाइथेन एम-45, 2-2.5 ग्राम/लीटर पानी में अथवा मैन्कोजेब या जिनेब 0.2:.0.25 का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

पपीता

आंवला

- नवरोपित आंवला के बागों में गर्मियों में 10-12 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। पौधों के बड़े हो जाने पर बागों में मई-जून में एक बार पानी देना आवश्यक है एवं सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक रहता है, जिससे भूमि मुलायम रहे तथा खरपतवार न उग सके। फूल आते समय

पुष्प एवं सगंधीय पौधे

- मार्च-अप्रैल बागवानी के लिए आदर्श समय है। गुलाब में अभी भी कलियां निकल सकती हैं और कुछ मौसमी फूलों में इस महीने के अंत में बीज बनेंगे, इसलिए कटाई शुरू की जा सकती है।
- **ग्लैडियोलसः** ग्लैडियोलस के कन्दों की खुदाई से 15 दिनों पूर्व सिंचाई बन्द कर दें और स्पाइक काटने के 40-45 दिनों बाद घनकन्दों (कार्म) की खुदाई करें। कॉर्म को सड़न रोग से बचाने हेतु 0.2 प्रतिशत मैन्कोजेब पाउडर से उपचारित करके शीतगृह में भण्डारण कर दें।

ग्लैडियोलस

- **गुलाबः** यह गुलाब के पौधे लगाने और काटने का सबसे अच्छा समय है। मैदानी इलाकों में मुरझाए फूलों और पत्तियों को काटते रहें। पौधों को 5-6 दिनों के अंतराल पर पानी दें। पाउडरी मिल्ड्यू की रोकथाम के लिए सल्फर फफूंदनाशकों का छिड़काव करें या धूल से साफ करें। किसी भी कीट के प्रकोप की नियमित निगरानी करें और महीने में एक बार कीटनाशक का छिड़काव करें। निराई-गुड़ाई और गुड़ाई नियमित रूप से करनी चाहिए।

गुलाब

- **रजनीगंधाः** रजनीगंधा में एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई एवं दो सप्ताह के अंतराल पर गुड़ाई करें।
- **गेंदाः** गेंदे की फसल में एफिड, कैटरपिलर तथा माइट्स का प्रकोप होता है, जिसके निराकरण करने के लिए 0.2 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स या 0.25 प्रतिशत केराथेन या 0.2 प्रतिशत रोगोर का छिड़काव प्रत्येक सप्ताह बाद कम से कम दो बार करना चाहिए।

आंवला

बागों में किसी भी तरह से पानी नहीं देना चाहिए।

- शुरू में आंवला के बगीचों में बीच की जगह में कोई फसल ली जा सकती है।
- आंवला में शूटगॉल मेकर छाल वाले कीट प्रमुख हैं, जिसके नियंत्रण हेतु मेटासिस्टॉक्स या डाइमिथोएट तथा 10 भाग मिट्टी का तेल मिलाकर रुई भिगोकर तना के छिद्रों में डालकर चिकनी मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।
- **केलाः** केले में प्रति पौधा 25 ग्राम नाइट्रोजन, 25 ग्राम फॉस्फोरस और 100 ग्राम पोटाश मृदा में गुड़ाई कर मिला दें। केले के पौधों में चारों ओर से निकलते हुए सकर्स को निकाल देना चाहिए, जो मुख्यतः फलों की गुणवत्ता, आकार और आकृति में सुधार करके मुख्य पौधे को लाभ पहुंचाता है। उचित विकास और उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए केले के पौधे को उचित पानी देना बहुत महत्वपूर्ण है।
- **अंगूरः** अंगूर में एक वर्ष के पौधे के लिए 50 ग्राम नाइट्रोजन, 40 ग्राम पोटाश, जिसे क्रमशः बढ़ाकर 5 वर्ष या इससे अधिक उम्र के पौधे में 250 ग्राम नाइट्रोजन, 200 ग्राम पोटाश का प्रयोग करें।
- **लीचीः** लीची के बागों में आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। 100 ग्राम यूरिया प्रति पेड़ प्रति वर्ष आयु की दर से डालें। लीची में फलछेदक की रोकथाम के लिए डाइक्लोरोफॉस 5 मि.ली. (70 ई. सी. न्यूवान) 10 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

औषधीय फसलें

मेंथा

- देश में कई दशकों से औषधीय पौधों की खेती होती रही है। किसान इससे अच्छा मुनाफा भी कमाते हैं। इनका इस्तेमाल कई तरह की दवा बनाने में होता है और मांग हमेशा बनी रहती है। इसी तरह की एक फसल है मेंथा, जिसकी खेती कर किसान मोटा मुनाफा कमा रहे हैं। मेंथा की खेती मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात और पंजाब के किसान मेंथा की खेती करते हैं।
- मेंथा की अच्छी उपज के लिए बलुई दोमट मृदा को उपयुक्त माना जाता है। इसके साथ ही जल निकासी की सुविधा अच्छी हो और मिट्टी का भुरभुरा होना भी जरूरी है। मेंथा की रोपाई से पहले खेत की गहरी जुताई करनी होती है। अंतिम जुताई के समय खेत में 300 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालने से उपज अच्छी होती है।
- रोपण शरद ऋतु (नवंबर-दिसंबर) या वसंत ऋतु (मार्च-अप्रैल) में किया

लीची

पेरीविंकल

पेरीविंकल या सदासुहागन एक बारहमासी सजावटी जड़ी-बूटी है, जो पूरे भारत में बंजर भूमि और रेतीले इलाकों में पाई जाती है। इसके बीजों को मार्च-अप्रैल में अच्छी तरह से तैयार, उभरी हुई नर्सरी क्यारियों में 8-10 सें.मी. की दूरी पर और लगभग 1.5 सें.मी. की गहराई पर पंक्तियों में बोया जाता है। पौध उगाने के लिए लगभग 500 ग्राम बीज 1 हैक्टर क्षेत्र पर्याप्त होता है। अंकुरण के दो महीने बाद, पौधे खेत में रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। हाल ही में, सी.आई.एम.ए.पी., लखनऊ द्वारा 'निर्मल' और 'धवल' नामक दो सफेद फूल वाली किस्में जारी की गई हैं, जो अधिक बायोमास उत्पादित करती हैं।

मेंथा

जाता है। एक हैक्टर भूमि पर रोपण के लिए लगभग 400 कि.ग्रा. स्टोलन या सकर्स की आवश्यकता होती है।

- **मेंथा की कुछ उन्नत किस्में हैं:** जापानी पुदीना (हिमालय, कालका, शिवालिक, ई.सी.-41911), पिपरमिंट (कुकरैल), स्पीयरमिंट (एमएसएस-1, एमईएसएस-5, पंजाब स्पीयरमिंट-1) और बर्गमोट मिंट (किरण)।
- मेंथा में 10-12 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहें तथा तेल निकालने हेतु मेंथा में पहली कटाई करें।
- **सर्पगंधा:** महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में अप्रैल का अंत, पश्चिम बंगाल में मई का पहला सप्ताह या थोड़ा बाद का समय तथा जम्मू और देहरादून में मई का तीसरा सप्ताह नर्सरी में बीज बोने के लिए सबसे उपयुक्त समय माना जाता है। नर्सरी को आंशिक छाया में 10×10 मीटर के उभरे हुए क्यारियों द्वारा तैयार किया जाता है। लगभग 500 वर्ग मीटर नर्सरी एक हैक्टर भूमि में रोपण के लिए पर्याप्त है। अप्रैल के अंत में 2-3 सें.मी. की दूरी पर उथली कूड़ों में बीज बोए जाते हैं। फिर कूड़ों को मिट्टी और गोबर खाद के बारीक मिश्रण से ढक दिया जाता है। हल्की सिंचाई करके क्यारियों को नम रखा जाता है। अंकुरण 15-20 दिनों के बाद शुरू होता है और 30 से 40 दिनों तक जारी रहता है।

सर्पगंधा

तुलसी

इस पौधे का उपयोग जड़ी-बूटी के रूप में किया जाता है। इसकी पत्तियों का उपयोग सलाद और अन्य व्यंजनों में मसाले के रूप में भी किया जाता है। पत्तियां, बीज और जड़ औषधीय रूप से उपयोगी हैं। इसकी नर्सरी फरवरी के तीसरे सप्ताह में तैयार की जा सकती है। आमतौर पर अप्रैल के मध्य में रोपाई शुरू की जाती है। रोपाई से 15 से 20 दिनों पहले नर्सरी के पौधों पर 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करने से रोपाई के लिए स्वस्थ पौध प्राप्त होती है। प्रति हैक्टर अधिक जड़ी-बूटी और तेल-उपज प्राप्त करने के लिए पौधों को 40 सें.मी.×50 सें.मी. की दूरी पर लगाने की सिफारिश की जाती है। रोपाई के तुरंत बाद सिंचाई की जाती है तथा गर्मियों में, प्रति माह 3 सिंचाई आवश्यक हैं। फसल की कटाई तब की जाती है, जब यह पूरी तरह खिल जाती है और पहली कटाई रोपण के लगभग 90-95 दिनों के बाद की जाती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
के चुनिंदा हिन्दी प्रकाशन

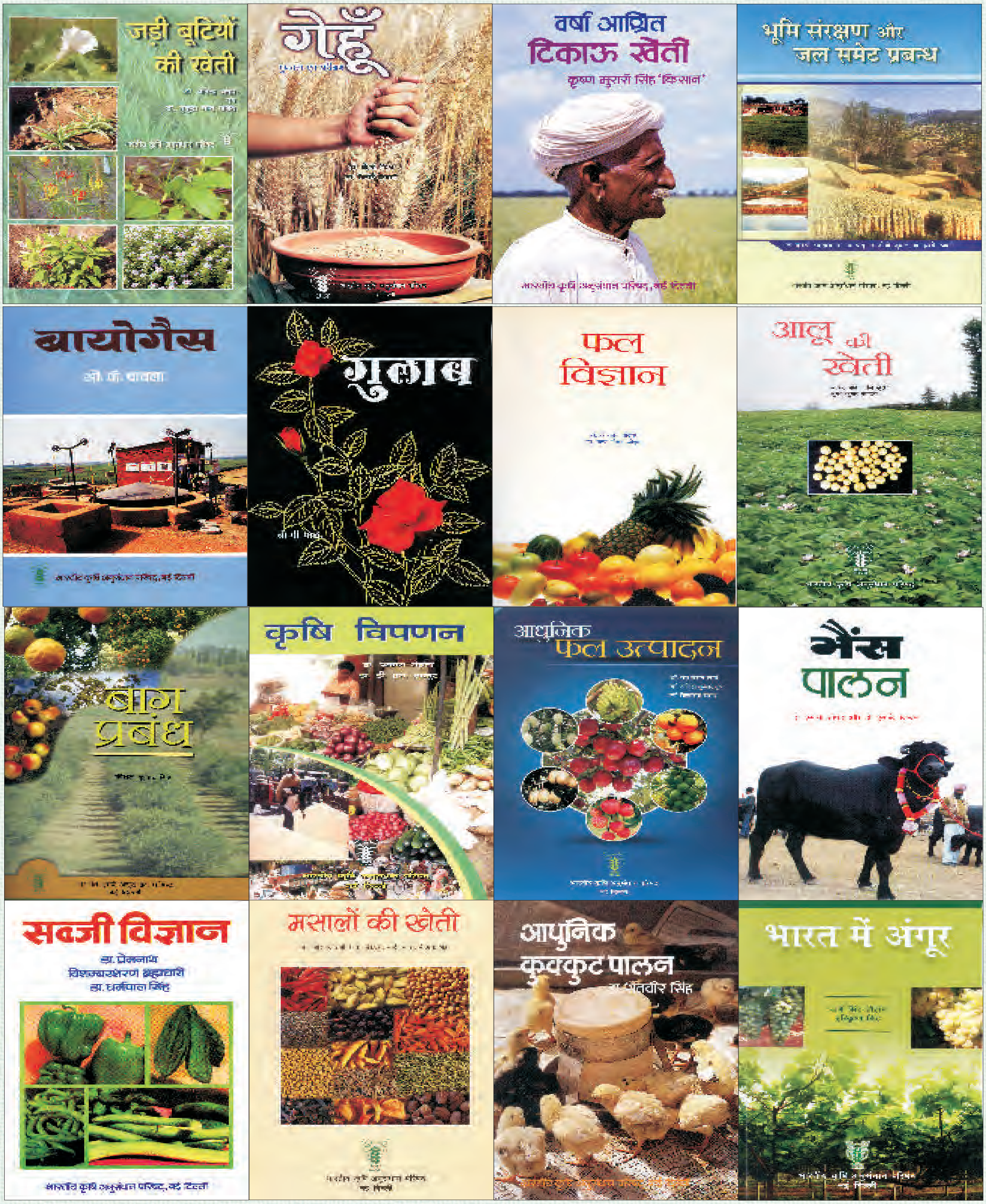

भाकृअनुप
ICAR

संपर्क सूत्र: प्रभारी, व्यवसाय एकक

कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली -110 012

दूरभाष: 011-25843657, E-mail: bmicar.org.in

परिषद की पत्रिकाओं की सदस्यता व नवीनीकरण हेतु फॉर्म

प्रिय ग्राहकों

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशित विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं की सदस्यता प्राप्त करने हेतु अनुरोध है कि आप पत्रिकाओं का वार्षिक सदस्यता शुल्क 'व्यवसाय प्रबंधक, भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली' के नाम देय बैंक ड्राफ्ट या NEFT द्वारा भेजने की व्यवस्था करें। इस प्रकार आपको पत्रिकाएं सुचारू रूप से मिलती रहेंगी और आप कृषि, बागवानी, पशुपालन, मछली पालन व अन्य सम्बद्ध क्षेत्रों में किये जा रहे अनुसंधान कार्यो से विकसित उन्नत तकनीकों को अपनाकर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर अपनी आय दोगुनी कर सकेंगे। परिषद की विभिन्न चयनित पत्रिकाओं के लिए नीचे दिए गए बॉक्स में चिन्ह (✓) लगाएं। पत्रिकाओं का वार्षिक सदस्यता निम्न है:-

पत्रिकाओं का नाम	वार्षिक शुल्क
खेती (मासिक)	रु. 300 ☐
फल फूल (द्विमासिक)	रु. 150 ☐
इंडियन फार्मिंग (अंग्रेजी मासिक)	रु. 300 ☐
इंडियन हॉर्टिकल्चर (अंग्रेजी द्विमासिक)	रु. 150 ☐

रिसर्च जर्नल	व्यक्तिगत	संस्थागत
इंडियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चरल साइंसेज (अंग्रेजी मासिक)	रु. 1000 ☐	रु. 3000 ☐
इंडियन जर्नल ऑफ एनिमल साइंसेज (अंग्रेजी मासिक)	रु. 1000 ☐	रु. 3000 ☐

उपरोक्त चिन्हित (✓) पत्रिकाओं। रिसर्च जर्नल की अग्रिम धन राशि रुपये .... का एन.ई.एफ.टी./आर.टी.जी.एस. या बैंक ड्राफ्ट संख्या न. ....दिनांक..........................बैंक का नाम एवं कोड...भेज रहें हैं, कृपया स्वीकार करें ।

नाम..

पूरा पता...

....

पिन कोड....................................फोन न. अथवा मोबाइल न. ....ई-मेल...

प्रकाशन मंगवाने की नियमावली

1. कृपया अपने ऑर्डर के साथ अपना नाम, पता, डाकघर आदि का पूर्ण विवरण, पिन कोड नंबर के साथ अवश्य लिखें।
2. भुगतान ''व्यवसाय प्रबंधक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली'' के नाम बैंक ड्राफ्ट द्वारा भेजें।
3. आरटीजीएस (RTGS) तथा एनईएफटी (NEFT) द्वारा ऑनलाइन अग्रिम भुगतान के लिए निम्नलिखित जानकारी देखें:-

	पुस्तकों के लिए	पत्रिकाओं और जर्नल के लिए
संस्था का नाम व पता	DKMA Revolving Fund Scheme	परियोजना निदेशक (DKMA)
बैंक का नाम	(केनरा बैंक) CANARA BANK	(केनरा बैंक) CANARA BANK
बैंक का पता	कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा, नई दिल्ली-110012	कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा, नई दिल्ली-110012
आईएफएससी कोड	CNRB0012413	CNRB0012413
एमआईसीआर संख्या	110015500	110015500
चालू खाता संख्या	24131010000043	24133050000040

PFMS Unique Code : DLND00001925 भारत सरकार एवं परिषद के संस्थानों के लिये।

नोट: कृपया एनईएफटी/आरटीजीएस से अग्रिम राशि भेजने के पश्चात हमें पत्र अथवा ई-मेल businessuniticar@gmail.com द्वारा अपने नाम व पते के साथ अपनी मांगी गई पुस्तकों, पत्रिकाओं एवं जर्नल के नाम और अवधि NEFT/RTGS नम्बर, राशि एवं बैंक का नाम इत्यादि सूचित करना आवश्यक है।

संपर्क सूत्र

प्रभारी, व्यवसाय एकक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

कृषि अनुसंधान भवन-1, पूसा, नई दिल्ली-110012

दूरभाष: 91-11-25843657 (D) 25841993 (Extn. 657 & 220)

ई-मेल: businessuniticar@gmail.com

वेबसाइट: www.icar.org.in

कृषि संबंधी कार्यों के लिए सेंसर-आधारित और रोबोटिक उपकरण

छवि-आधारित परिवर्तनीय-दर नाइट्रोजन एप्लीकेटर

धान और गेहूं की फसलों पर तरल नैनो-नाइट्रोजन उर्वरक का अनुप्रयोग करने के लिए एक छवि-आधारित परिवर्तनीय-दर नाइट्रोजन एप्लीकेटर विकसित किया गया। यह एप्लीकेटर फसल के दबाव का आकलन करने के लिए वास्तविक समय की छवियों का उपयोग करते हुए फसल की आवश्यकताओं के आधार पर

उर्वरक की दर को समायोजित करता है। एक माइक्रोकंट्रोलर सबरटूथ डीसी-संचालित ड्राइवर के माध्यम से आनुपातिक नियंत्रण वॉल्व को सक्रिय करता है। यह उर्वरक प्रवाह को नियंत्रित करता है। रास्पबेरी पाई 4 का उपयोग करके थॉनी सॉफ्टवेयर पर विकसित पायथन 3 कोड, नियंत्रण वॉल्व को संचालित करता है। यह प्रणाली नाइट्रोजन दबाव के स्तर के अनुसार तरल उर्वरक दर को समायोजित करती है। चार खोखले शंकु नोजिल 1.8 कि.मी./घंटा की गति से 1.2 मीटर चौड़ाई पर एक समान छिड़काव सुनिश्चित करते हैं। इस एप्लीकेटर का परीक्षण धान और गेहूं की फसलों पर किया गया। इसमें तरल उर्वरक भाकृअनुप-सीआईएई, भोपाल के पर्णीय अनुप्रयोग के लिए दबाव की पहचान करने में 70 प्रतिशत से अधिक सटीकता पाई गई।

मानवरहित बहुउद्देश्यीय ट्रैक-प्रकार के वाहन

छोटे खेतों और पहाड़ी क्षेत्रों में उपयोग के लिए एक मानव रहित बहुद्देश्यीय-ट्रैक-प्रकार का वाहन विकसित किया गया था। इसमें 8.9 किलोवॉट का पेट्रोल इंजन लगा है। इस वाहन को रिमोट-कंट्रोल प्रणाली के माध्यम से संचालित किया जाता है, जो कृषि कार्यों के दौरान दिशा, गति, ब्रेकिंग और उपकरण कार्यों का प्रबंधन करता है। वाहन के लिए विकसित किए गए सह-योजकों में एक बहु-पंक्ति प्लांटर

और एक रोटरी वीडर शामिल है। इस प्रणाली ने गाजर की रोपाई के दौरान 0.16 हैक्टर/घंटा की क्षेत्र क्षमता और 78 प्रतिशत की क्षेत्र दक्षता का प्रदर्शन किया। रोटरी वीडर अटैचमेंट का परीक्षण गन्ने के खेतों में किया गया। इसमें 76 प्रतिशत की क्षेत्र दक्षता, 91 प्रतिशत की निराई दक्षता और केवल 1.2 प्रतिशत की न्यूनतम पौधे की क्षति पाई गई।

रेडियो फ्रीक्वेंसी नियंत्रित कीटनाशी एप्लीकेटर

एक रेडियो फ्रीक्वेंसी (आरएफ) नियंत्रित कीटनाशी एप्लीकेटर विकसित किया गया, जिसमें चार मुख्य घटक शामिल हैं: आरएफ मॉड्यूल, स्प्रेयर मॉड्यूल (जिसमें 19 एल/मिनट पंप, स्प्रे बूम, नोजिल और रासायनिक टैंक), ड्राइवर मॉड्यूल और पहियों वाली ट्रॉली। यह मशीन 24 वीडीसी मोटर द्वारा संचालित है। आरएफ मॉड्यूल लंबी दूरी का संचार सुनिश्चित करता है। फील्ड ट्रायल में, एप्लीकेटर ने 2.65 मीटर बूम और 12 नोजिल

के साथ 0.5 हैक्टर/घंटा को कवर किया। इससे 3 कि.मी./घंटा की आगे की गति पर 65-70 प्रतिशत दक्षता प्राप्त होती है। हालांकि, असमान भूभाग के कारण गति प्रभावित हुई।

उर्वरक अनुप्रयोग के लिए वीआरटी रोबोट

विभिन्न फसलों में उनके विकास चक्र के दौरान सटीक उर्वरक अनुप्रयोग के लिए एक परिवर्तनीय दर प्रौद्योगिकी वीआरटी (VRT) रोबोट विकसित किया गया था। यह रोबोट 1.2 मीटर की धरातल ऊंचाई के साथ अरहर जैसी ऊंची खड़ी फसलों के लिए उपयुक्त है। इसकी उर्वरक निर्वहन दर का रोटरी एनकोडर का उपयोग करके रोबोट की आगे की गति के साथ ताल-मेल बिठाया जाता है। वीआरटी रोबोट में एक शीर्ष कवर, कैमरा बॉक्स (आगे और पीछे), लिफ्टिंग मैकेनिज्म, हिच बार, फरो आपेनर्स, क्रॉप डिफ्लेक्टर, बजर के साथ एलईडी इंडिकेटर, उर्वरक अनुप्रयोग दर एक्ट्यूएटर, डिलीवरी पाइप, कास्टर व्हील, डिस्प्ले स्क्रीन, बैटरी, कंट्रोलर, मोटर ड्राइवर, व्हील, दो 350 डब्ल्यूडीसी मोटर्स (24 वाल्ट), गियरबॉक्स, उर्वरक बॉक्स, सर्वोमोटर (स्लॉटेड रोलर को समायोजित करने के लिए) और शॉफ्ट रोटेशन के लिए डीसी मोटर्स शामिल है। गियरबॉक्स पांच गति सेटिंग्स प्रदान करता है,

जिसमें पहले गियर में 0.38 कि.मी./घंटा से लेकर 5वें गियर में 0.98 कि.मी./घंटा तक की गति होती है। रोबोट की फील्ड क्षमता 0.56 हैक्टर/दिन से लेकर 1.39 हैक्टर/दिन तक है और इसकी कुल वहन क्षमता लगभग 450 कि.ग्रा. है। ■

(स्रोतः भाकृअनुप वार्षिक रिपोर्ट 2024-25)

माइक्रो-कंट्रोलर आधारित स्वचालित कुक्कुट आहार डिस्पेंसर

कुक्कुट पालन में अस्वास्थ्यकर कार्य शामिल है और इससे पक्षियों से मनुष्यों में और इसके विपरीत संक्रामक रोग फैलते हैं। मानवरहित कुक्कुट आहार प्रदान के लिए एक स्वचालित डिस्पेंसर विकसित किया गया था। यह विकसित डिस्पेंसर माइक्रो-कंट्रोलर द्वारा संचालित स्टेपर मोटर से सुसज्जित है। फीड हॉपर की क्षमता 62 कि.ग्रा. है। इसके सफलतापूर्वक संचालन के लिए चार रोलर्स दिए गए हैं। प्रति 100 फीड पर मशीन की पूंजीगत लागत और परिचालन लागत क्रमशः 50,000 रुपये और 2.30 रुपये है। यह मशीन पारंपरिक आहार वितरण की तुलना में फीडिंग के समय और लागत में 65-70 प्रतिशत की बचत कर सकती है।

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

डा. अनुराधा अग्रवाल, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 469, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली-110092 से लेजरटाईपसैट एवं मुद्रित। सम्पादक: सुनीता अरोड़ा